

स्वात्मबुद्धिप्रकाश

वीर संवत्-२५३८ : अंक-१८० वर्ष - १६ : सप्टेम्बर-२०१२

भादरवा सुद ६, शुक्रवार ता. ८-०८-१९७८. वयनामृत-२२३ उपर
पूज्य गुरुदेवश्री कानञ्जवस्वामीनुं प्रवचन. प्रवचन नं. ८८

शुद्धात्मा में स्थिर होना वही कार्य है, वही सर्वस्व है. स्थिर
हो जाना ही सर्वस्व है, शुभ भाव आये परंतु वही सर्वस्व नहीं
है. २२३.

२२३ वा बोल है. 'शुद्धात्म में स्थिर होना वही कार्य है,...' क्या कहते हैं ?
आहा...हा...! शुद्ध आत्मा चैतन्य, उसमें दृष्टि जमाकर स्थिर होना वही कार्य है.
आहा...हा...! चैतन्य की ऐसी जंभना याहिये कि चैतन्य बिना कहीं कुछ ठीक नहीं
लगता. मेरी यीज जो भगवान आत्मा, चैतन्यस्वरूप भगवान,... 'सभी मने देहन
दे, चंद्रप्रभु मुझ चंद्र, सभी मने देहन दे...' आहा...हा...! शुद्ध परिशक्तिरूपी सभी,
उसको आत्मा कहते हैं कि अहो...! सभी मेरे चंद्रप्रभु. चंद्रप्रभु लिये हैं लेकिन चंद्रप्रभु
(माने) आत्मा. शीतलनाथ, शीतलस्वरूप चेतन, मुझे देहन दे. मुझे दूसरी कोई यीज
नहीं याहिये. आहा...हा...! समझ में आया ? चैतन्य के दर्शन करने की जंभना, जिसे
अंदर जंभना है... आहा...हा...! कोई यीज मुझे पसंद, रुचि में नहीं आती. आहा...हा...!
प्रभु ! तेरा दर्शन मुझे देहने दे. आहा...हा...! ऐसी बात है, प्रभु ! आहा...हा...!

अकेन्द्रिय, दोषन्द्रिय, त्रिषन्द्रिय, चौषन्द्रिय, पंचेन्द्रियपने में प्रभु ! तुझे कहीं नहीं
देभा. आहा...हा...! अरे...! अनंत बार मुनिपना लिया, लेकिन तेरा दर्शन नहीं हुआ,
नाथ ! तो चैतन्य का अकेबार दर्शन करने को दे. आहा...हा...! दूसरी सब जंजट
छोडकर... आहा...हा...! धर्मा जोव को... आहा...हा...! चैतन्य (का) अनुभव करने में जिसकी
लगनी लगी है. आहा...हा...! दुनिया मान दे, न दे उसके साथ कोई संबंध है नहीं.

दुनिया गिनती में गीने कि यह अके धर्मा हैं, वह कोई यीज नहीं. आहा...हा...! मेरा चैतन्य भगवान, उस
पर दृष्टि करने से प्राप्त होता है तो सभी मेरी दृष्टि स्वभाव पर करने दे. आहा...हा...! जगत के शरीर
के प्राण भी लदे जाये... आहा...हा...! मेरा चैतन्य भावप्राण मेरी दृष्टि में आओ और चैतन्यभाव प्राण का
मुझे दर्शन हो, वही धर्मा की भावना होती है. आहा...हा...! समझ में आया ?



‘शुद्धात्मा में स्थिर...’ भगवान.. आडा..डा..! क्रियाकांड सब रागादि हो उससे मुझे क्या लाभ है ? आडा..डा..! मैं तो भगवान पूर्ण स्वरूप शुद्ध चैतन्य, धर्मी की दृष्टि में शत्रुआत में... आडा..डा..! राग में तो नहीं लेकिन पर्याय में भी रुकना नहीं. आडा..डा..! भाई ! मार्ग तो ऐसा अलौकिक है. आडा..डा..! अंतर स्वरूप भगवान, उसमें दृष्टि देना और भगवान चैतन्य से भेट करना... आडा..डा..! प्रभु ! मैंने राग और पुण्य-पाप का भेदा अनंतभार किया, वड तो परिभ्रमण का कारण हुआ. आडा..डा..! समज में आया ?

भगत को आत्मा की ભક્તિ अंदर से उठती है. आडा..डा..! यड बात है, भाई ! सारी दुनिया छोडकर, मेरा भगवान पूर्णानंद प्रभु ! वड मुझे मिल जाये, और उसका मुझे भेदा हो... आडा..डा..! यड तुम्हारे रूपे-रूपे तो कहीं धूल में रह गये. आडा..डा..! अनंतकाल में चैतन्य भगवान, अतीन्द्रिय आनंद स्वरूप, प्रभु ! उसका मिलन हो जाये, और वड मिलने के बाद स्थिर हो जाना... आडा..डा..! यड शुद्धात्म का कर्तव्य है. समज में आया ? भाई ! मार्ग कोई अलौकिक चीज है. आडा..डा..! चैतन्य जगृत स्वभाव का पिंड, प्रभु ! चैतन्यरत्नाकर समुद्र-दरिया, उससे भेंट करके अंदर स्थिर हो जाना. यड है. समज में आया ?

‘स्थिर होना वही कार्य है...’ आडा..डा..! पर का तो कार्य नहीं करना है, लेकिन दया-दान का कार्य वड भी मेरा कार्य नहीं, प्रभु ! मैं तो ज्ञाता-दृष्टा चैतन्यस्वरूप हूँ. आडा..डा..! मेरा कार्य तो शुद्धात्मा प्रभु, उसमें रहना वड मेरा कार्य है. आडा..डा..! मेरे निजघर में वास करना. स्थिर... स्थिर... है न ? निवास करना. आडा..डा..! अनादि से पुण्य-पाप और पर्याय में वास लिया, प्रभु ! वड तो मिथ्याबुद्धि थी. आडा..डा..!

यहां कडते हैं, प्रभु ! चैतन्यप्राण... पडली जिवत्वशक्ति ली न ? उसमें चैतन्य ज्ञान, दर्शन, आनंद, सत्ता, प्राण, जो त्रिकावी प्राण... आडा..डा..!

वड प्राण से जिसका जवन है, जैसे जव की भेंट करना. ऐसी बात है, भाई ! यड सम्यग्दर्शन कैसे होता है उसकी बात चलती है. आडा..डा..! सम्यक् नाम सत्यदर्शन. आडा..डा..! दूसरे कडते हैं वड नहीं, सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो सर्वज्ञस्वभावी, सर्वज्ञस्वभावी त्रिकावी वस्तु... आडा..डा..! उसमें दृष्टि करके और स्थिरता करके लीन होना... आडा..डा..! यही शुद्धात्मा का कार्य है. लोगों को इसमें अंकांत लगता है कि कुछ साधन चाहिए न ? कोई कार्य करना, राग आदि, मंद आदि, भक्ति आदि करे. अरे...! प्रभु ! वड तो राग है न, प्रभु ! राग के अवलंबन से शुद्धात्म का अवलंबन होता है ? आडा..डा..! चैतन्यघन वीतरागमूर्ति, प्रभु ! उसकी तो वीतराग शुद्धउपयोग से भेंट होती है. समज में आया ? वड उपर आ गया है. ‘उपयोग की आत्मा में ही प्रतिष्ठा करते हैं.’ है न ? शुद्धोपयोग २२१ में आ गया. आडा..डा..!

शुभ-अशुभराग, उसको छोडकर, पर तो छोडना है ही नहीं, पर तो भिन्न ही है. आडा..डा..! शरीर, कर्म, स्त्री, कुटुंब, परिवार आदि पर चीज को छोडनी कहां हैं, वड तो भिन्न ही हैं. आडा..डा..! समज में आया ? वड तो भिन्न ही है. तेरे पास आयी नहीं और तेरी है नहीं. आडा..डा..! तेरे में जो पुण्य और पाप आदि के भाव हैं, वड तेरी पर्याय के पास है. आडा..डा..! और वड तेरी पर्याय में है. आडा..डा..! उसको भी छोडकर... आडा..डा..! भगवान चैतन्य स्वभाव में, चैतन्यमूर्ति प्रभु स्वयंभू अनंत अनंत गुण का रत्नाकर, भाई ! उसमें मुझे रहने दो. ऐसा प्रभु को, आत्मा को कडते हैं, हां ! आडा..डा..! ऐसी बातें लोगों को कठिन लगे. कोई बाहर का साधन हो और इससे हो, उससे हो... आडा..डा..!

(वर्तमान में) तो कोई जैसे निकले हैं, जैनधर्म में आया था. ‘कौशल्य’ (नामकी) अक ब्रह्मचारी स्त्री है. सब धर्म में अक ही बात की है यथार्थ, बस. अरे...! प्रभु ! क्या कडते हो ? भाई ! जिसमें सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा नहीं और जिसमें सर्वज्ञ प्रगट

पर्यायवाला आत्मा नहीं... आडा..डा..! वहां सर्वज्ञस्वभावी आत्मा की बात कौन कर सकते हैं ? समज में आया ? आडा..डा..!

यहां सर्वज्ञस्वभाव आत्मा, वस्तु स्वभाव ही सर्वज्ञस्वभावी आत्मा है, ऐसी जिसमें नहीं, और जिसमें सर्वज्ञस्वभावी पर्याय प्रगट हुई, क्योंकि सर्वज्ञ स्वभाव है. आडा..डा..! इसमें स्थिर होना वह कार्य है. स्थिर होते हैं उसको सर्वज्ञपना हो जाता है. आडा..डा..! ऐसी सर्वज्ञ हुआ, उन्हें जो जानने में आया, और उनकी वाणी में जो आया, कि तुम वीतरागमूर्ति, सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु तुम हो. आडा..डा..! ऐसी बात श्रुत में कभी आयी नहीं. ऐसी यौथी गाथा में आता है न ? श्रुत, परिचित, अनुभूता. भगवान ! शुभराग की क्रिया भी अनंत बार परियय में आयी और सुननेमें भी आयी, अनुभव में भी आयी... आडा..डा..! लेकिन मेरा नाथ, अंदर चैतन्य आनंद का नाथ अनुभव में न आया, प्रभु ! आडा..डा..! समज में आया ? सर्वज्ञ ने कडा और सर्वज्ञ हुआ, तो सर्वज्ञ स्वभावी है, उसमें से सर्वज्ञ हुआ. आडा..डा..! भाई ! यह बात कहां है ? समज में आया ? यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के मार्ग में जो कडा, यह वस्तु और कहीं है नहीं. जहां ऐसी भी निर्धार नहीं... समज में आया ? क्या कहते हैं ?

एक समय में तीनकाव, तीनलोक ज्ञान की पर्याय जानती है, जानने में आ जाता है. आडा..डा..! ऐसी पर्याय जिसको प्रगट हुई, क्योंकि उसका स्वभाव ही ऐसी है. आडा..डा..! स्वभाव में स्थिर होकर, शक्तिमें से व्यक्तता प्रगट की... आडा..डा..! ऐसे सर्वज्ञ भगवान, उनकी वाणी में यह आया. आडा..डा..! प्रभु ! तुम शुद्धात्मा हो न ! हमने जैसा प्रगट किया तुम ऐसी चीज हो. आडा..डा..! हमारी नात के, जात के तुम आत्मा हो, भाई ! आडा..डा..! हमारे में पर्याय प्रगट हुई, तेरे में स्वभाव-शक्ति परिपूर्णा भरा है. आडा..डा..!

सात तत्त्व का निर्णय करते हैं लेकिन एक आत्मा

का निर्णय अंदर आना.. आडा..डा..! 'भूदत्थेणाभिगदा' आ गया ? १३ वीं गाथा. चैतन्य ज्ञायक भगवान परमानंद, प्रभु ! आडा..डा..! ऐसी लगनी लगे की जिसमें स्थिर हो जाना. आडा..डा..! समज में आया ? यह बात है यहां. आडा..डा..!

'वही सर्वस्व है.' देओ ! आडा..डा..! सर्वस्व. भगवान पूर्णानंद प्रभु ! उसकी दृष्टि लगाकर, उसमें स्थिर होना ही सर्वस्व है. आडा..डा..! बारह अंग में भी अनुभूति करने को कडा है. 'कलश टीका' में ऐसी आया है. आडा..डा..! बोलना यह क्या ? विकल्प क्या चीज है ? आडा..डा..! शास्त्र का ज्ञान भी क्या चीज है ?

मुझे तो अंदर ऐसी आ गया था कि शास्त्रज्ञान है वह परद्रव्य है, वह स्वद्रव्य नहीं. आडा..डा..! यहि परद्रव्य न हो तो उसमें आनंद आना चाहिए. परद्रव्य कडा है तो दुःख है तो वह परद्रव्य है. आडा..डा..! समज में आया ? 'नियमसार' में पर्याय को परद्रव्य कडा वह दूसरी चीज. वहां तो निर्मल पर्याय को भी परद्रव्य कडा. आडा..डा..! लेकिन यहां तो शास्त्र का ज्ञान और राग की मंदता का मडाप्रतका भाव... आडा..डा..! वह स्वद्रव्य में नहीं, इसलिये परद्रव्य है. आडा..डा..! परद्रव्य का लक्ष्य, अवलंबन छोडकर... आडा..डा..! मैं तो शुद्धात्मा हूं. आडा..डा..! उसमें सर्वस्व आ जाता है. आडा..डा..! समज में आया ?

'स्थिर हो जाना ही सर्वस्व है,...' आडा..डा..! चैतन्य, चैतन्यदल वस्तु, उसमें दृष्टि करके स्थिर हो जाना... आडा..डा..! वही सर्वस्व है. वही सर्वस्व, वही कर्तव्य है. लोगों को कठिन लगे. क्या करें ? करना तो यह है. उसके बिना संसार का कभी अंत नहीं आयेगा, प्रभु ! बाहर से जाने की हम सुभी हैं, पैसा, एजजत, कीर्ति... धूल में भी नहीं है, भाई ! आडा..डा..! शास्त्र का ज्ञान करके मानना कि मैं सुभी हूं. वह भी मिथ्यात्वभाव है. आडा..डा..!

इसलिये यहां कडा कि शुद्धात्मा में स्थिर होना. आडा..डा..! तु अनादि से यहां अटक गया है, प्रभु !

આહા..હા..! શુભભાવ આયા, શાસ્ત્રજ્ઞાન હુઆ, પંચ મહાવ્રત આયા, બાહર મુનિપના લિયા, મુનિપના બાહર લિયા, લેકિન મુનિપના હુઆ નહીં. આહા..હા..! મુનિપના કબ હોતા હૈ ? શુદ્ધાત્મા કી દષ્ટિ કરકે અંદર સ્થિર હોના, તબ મુનિપના હોતા હૈ. મુનિપના લે લેના, બનના અલગ ચીજ હૈ ઓર મુનિપના હોના દૂસરી ચીજ હૈ. આહા..હા..!

‘શુભભાવ આયે...’ આહા..હા..! અશુભ કી તો બાત યહાં છોડ દી. દયા, દાન, ભક્તિ, પૂજા, વ્રત, શાસ્ત્ર વાંચન, શાસ્ત્ર સુનના... આહા..હા..! ઐસે ‘શુભભાવ આયે પરંતુ વહ સર્વસ્વ નહીં હૈ.’ યે કોઈ ચીજ સર્વસ્વ આત્મા નહીં. આહા..હા..! સમજ મેં આયા ? સર્વ-સ્વ નહીં. સર્વ સ્વ નહીં. વહ પર હૈ. આહા..હા..! ઐસી બાર્તે હેં.

હાથી કે બાહર કે દાંત અલગ હૈ, ઐસા લેખ હૈ. વર્તમાન મેં કોઈ ‘કાનજીસ્વામી’ કે ભક્ત દિખતે હેં. કોઈ મુનિ કે ભક્ત દિખતે હેં, લેકિન મહાવીર કો ભૂલ ગયે હેં, ઐસા લિખા હૈ. અરે...! પ્રભુ ! ઉસકો ઐસા હૈ કિ અનેકાંત હોના યહ મહાવીર કા ધર્મ હૈ.

આહા..હા..! વ્યવહાર સે ભી ધર્મ હોતા હૈ, નિશ્ચય સે ભી હોતા હૈ, નિમિત્ત સે ભી હોતા હૈ, ઉપાદાન સે ભી હોતા હૈ. આહા..હા..! વહ અનેકાંત હૈ. ભગવાન ! આહા..હા..! સ્વ કી અસ્તિ ઓર પર કી નાસ્તિ ઉસકા નામ અનેકાંત હૈ. અનેક ધર્મ કબ કહને મેં આતા હૈ ? કિ સ્વ કી અસ્તિ ઓર પર કી નાસ્તિ... આહા..હા..! ઉસકા નામ અનેકાંત (હૈ). યહાં બાત ઐસી આતી હૈ ન કિ વ્યવહાર સે લાભ નહીં હોતા હૈ. તો એકાંત હૈ. અરે...! પ્રભુ ! સમ્યક્ એકાંત હૈ. આહા..હા..! શુભભાવ આયા લેકિન ઉસકો છોડકર, શુદ્ધ ભગવાન અંદર પૂર્ણાનંદ કા નાથ બિરાજતા હૈ ન... આહા..હા..! વહાં નજર કરો ન, પ્રભુ ! આહા..હા..! નજર બાહર ઘુમતી હૈ... આહા..હા..! જહાં નિધાન ભગવાન પડા હૈ વહાં નજર કર ના. આહા..હા..! વહ સર્વસ્વ હૈ. આહા..હા..! દુનિયા માનો ન માનો, દુનિયા મેં સત્ કી સંખ્યા હો ન હો. લેકિન સત્ય તો યહ હૈ. આહા..હા..!

‘શુભભાવ આયે પરંતુ વહ સર્વસ્વ નહીં.’ આહા..હા..! ૨૨૩ બોલ (પૂરા) હુઆ. આહા..હા..!

(શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક)

‘જગતને, જગતની લીલાને બેઠા બેઠા મફતમાં જોઈએ છીએ.’

મોક્ષમાર્ગ પ્રગટ થઈને આત્મભાવની પરિણતિ સુયોગ્ય પ્રકારે વર્તી રહી છે અર્થાત્ જ્ઞાતાદષ્ટા થયા છીએ તેમ દર્શાવવા, જગતને અને જગતની વિચિત્રતાઓને વીતરાગભાવે જોવાય છે. કયાંય પણ હરખ-શોક થવાનું સમ્યક્જ્ઞાનને કારણ નથી, તેવો નિર્દેશ ઉક્ત વચનામૃતમાં સારી રીતે વ્યક્ત થાય છે. જ્ઞાનદશાના પહેલા જ પત્રમાં ઉક્ત થોડો વચનોમાં—સ્વયંની દ્રવ્યદષ્ટિ, સમ્યગ્જ્ઞાનરૂપ દશા, વીતરાગી સમભાવ, પૂર્ણ સિદ્ધપદની અભિલાષા એ વગેરે સમ્યગ્દર્શનના અંગભૂત ભાવોની અભિવ્યક્તિ અતિ ભાવવાહી અને અસાધારણ શૈલીમાં આલેખાયેલી જોવામાં આવે છે.

પત્રની ભાષા-શૈલી એટલી અસાધારણ છે કે ભાષાના વિષયમાં પારંગત વિદ્વાનો પણ આશ્ચર્ય અનુભવે-તેવી શૈલી છે, જેની પ્રશંસા માટે શબ્દો શોધવા જતાં મળતાં નથી.

ટ્રસ્ટના ‘સ્વાનુભૂતિપ્રકાશ’ના આ ગુજરાતી અંક (સપ્ટેમ્બર-૨૦૧૨નું) શુલ્ક શ્રી નીરવભાઈ ધર્મેન્દ્રભાઈ વોરા, ભાવનગરના નામથી સાભાર પ્રાપ્ત થયું છે, જેના કારણે આ અંક બધા પાઠકોને મોકલવામાં આવ્યો છે.



શ્રી પરમાગમસાર, વચનામૃત-૩૪૮ ઉપર
પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈનું પ્રવચન,
પ્રવચન નં. ૧૭૧ (તા.૩૧-૮-૧૯૮૩, ભાવનગર)

‘સમયસાર’ની ૧૭-૧૮ ગાથામાં મોક્ષાર્થી આત્મા કેવો હોય એ વિષય ઉપર પૂજ્ય ‘ગુરુદેવશ્રી’નું આમાં વિવેચન છે. ‘મોક્ષાર્થી પુરુષ એટલે ?-કે અનંત અનંત સુખની પ્રાપ્ત અને અનંત દુઃખના વ્યયનો અર્થ.’ જે આત્માને જરા પણ દુઃખ અથવા જરા પણ દોષ જોઈતો નથી અને પરિપૂર્ણ નિર્દોષતા અને પરિપૂર્ણ સુખ જોઈએ છે એ અહીંયાં મોક્ષાર્થી કહેવામાં આવ્યો છે. દોષ અને દુઃખને અવિનાભાવપણું છે. નિર્દોષતા અને સુખને અવિનાભાવપણું છે. પૂરું સુખ, કલ્પનામાં આવેલું પૂરું સુખ, કલ્પિત સુખ પણ પૂરું, એ તો જગતના સર્વ પ્રાણી ચાહે છે. કોઈને દુઃખ જોઈએ છે એ પ્રશ્ન નથી. પણ સાથે દોષને છોડવો નથી, દોષને મૂકવો નથી, દોષ કરતા રહેવું છે, દોષને પાળવો છે, પોષવો છે, દોષનો અભિપ્રાય મજબૂત છે, અનાદિનો છે એવો ને એવો મજબૂત છે અને સુખ જોઈએ છે, એ વાત કોઈ કાળે બનવાની નથી. અશક્ય છે અને અસંભવિત છે.

સુખને નિર્દોષતા સાથે સંબંધ છે અને એ સુખ છે એ જગતનું ભૌતિકસુખ કે દૈહિકસુખ નથી, ઈન્દ્રિયજનિત સુખ નથી પણ તે આત્મિક અતીન્દ્રિય સુખ છે અને એને નિર્દોષતા સાથે સંબંધ છે. ખરેખર તો એને રાગ-દ્વેષના અભાવ સાથે સંબંધ છે. એવો જે પુરુષ છે એમ કહેવું છે. એવો જે આત્મા છે કે જેને આવું નિર્દોષ સુખ જોઈએ છે. ‘શ્રીમદ્ગૃહ્ય’એ પણ ૧૫ વર્ષની ઉંમરે એ ગાયું છે, ‘નિર્દોષ સુખ, નિર્દોષ આનંદ લ્યો ગમે ત્યાંથી ભલે, પણ એ દિવ્ય શક્તિમાન જેથી ઝંઝીરેથી નીકળે.’ દોષની ઝંઝીર છે, દોષની હાથકડી છે, બેડી છે એનાથી છૂટે અને એ નિર્દોષ સુખમાં આવે એમ બને છે. એટલે પહેલા એ વાતનો લૌકિક સુખનો તો નિષેધ કરી નાખ્યો કે ‘લક્ષ્મી અને

અધિકાર વધતા શું વધ્યું તે તો કહો.’ જેને લોકો સુખ કહે છે એની કિંમત તો પહેલા ઉડાડી. પૈસો અને સત્તા એ બંનેમાં સુખ છે, કુટુંબ-પરિવારમાં સુખ છે એ વાત તો પહેલેથી Cancel કરી છે. એ વાતમાં તો કાંઈ માલ છે નહિ. એનાથી તો દુઃખનું વધવાપણું છે. ઘટવાપણું પણ નથી, નાશ થવાનો પ્રશ્ન નથી. ઘટવાપણું તો નથી પણ વધવાપણું છે. અને સંસાર પરિભ્રમણમાં એ બધા નિમિત્તો છે. ઉપાદાનમાં ભાવ પોતાનો છે. એનાથી જેને પડખું ફેરવવું છે અને અનંત અનંત સુખ, અનંત અનંત પરિપૂર્ણ નિર્દોષતા જોઈએ, કિંચિત્માત્ર દોષનો કણ ન જોઈએ એ મોક્ષાર્થી છે. આ પહેલી શરત છે, પછી આત્મજ્ઞાનની વાત છે. એ પહેલા કોઈ આત્માને જાણવાનો પ્રયત્ન કરે અથવા દોષનો અભિપ્રાય રહે અને આત્માને જાણવાનો પ્રયત્ન કરે, તો પણ આત્માને જાણવાનો તેનો પ્રયત્ન સફળ થતો નથી, એ પ્રયત્ન નિષ્ફળ જાય છે.

મુમુક્ષુ :- આત્માને જાણે પછી દોષનો અભિપ્રાય ટળે કે દોષનો અભિપ્રાય ટળે પછી આત્માને જાણે ?

પૂજ્ય ભાઈશ્રી :- નહિ. પહેલા એને નિર્દોષ, પરિપૂર્ણ નિર્દોષ થવું છે એ ધ્યેય બાંધવું જોઈશે. બહુ Practical side એની વિચારવા જેવી છે, કે કોઈ જીવ આત્મજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરે તે પહેલા તે અંગેની વિચારણામાંથી પસાર થાય છે. એટલે ‘શ્રીમદ્ગૃહ્ય’એ એ કહ્યું, કે ‘વિચારદશા વિના જ્ઞાનદશા ન થાય, ન હોય.’ તો એ જે વિચારણા ચાલશે એ વિચારણા એની ચાલી શકશે કે કેમ એ સવાલ છે. કેમકે પૂર્વ સંસ્કાર ઘણા પડ્યા છે. અનાદિના એવા સંસ્કાર પડ્યા છે, કે એને ભૌતિકસુખ, દૈહિકસુખ જોઈએ. ઘણી સમસ્યાઓ છે, અનેક પ્રકારનું અસમાધાન ઊભું છે, જગતમાં આ બધું

આમ કેમ થાય છે ? જેટલા પ્રસંગો બને છે એને ક્યાંય સમાધાન થતું નથી. કેમકે વસ્તુ વ્યવસ્થાની ખબર નથી, સાથે એની ઇચ્છાઓની આકુળતા પણ ઊભી છે. એવી ઇચ્છાઓના ભડકા છે કે જેમ આગના ભડકા હોય એવા ભડકા છે. કોઈ રીતે શાંત થાય એવું નથી. આત્મિક શાંતિ ઉત્પન્ન ન થાય તો પરિણામમાં એ પ્રકાર શાંત થાય એ કોઈ સ્થિતિ નથી. તો એ બધી સ્થિતિમાં એને ટકવું, એનું કારણ તો કોઈક એને જોઈશે.

માણસ એમ કહે છે, કે આ સ્વાધ્યાય કરવા બેઠા હોય અને ઘરનો વિચાર આવે છે, સ્વાધ્યાય કરવા બેઠા હોય અને દુકાનનો વિચાર આવે છે, સ્વાધ્યાય કરતા હોય અને બીજા વિચાર આવી જાય છે. એનું કારણ શું છે? અમે એમ પૂછીએ છીએ કે બીજા કાર્યો કરતી વખતે તને આત્માના વિચાર કેમ આવતા નથી ? એના બદલે આત્માના વિચાર કરવાનો અહીંયાં સ્વાધ્યાય આદિ ઉદ્ય ચાલે છે અને બીજા વિચાર આવે છે. શું કારણ છે ? કે પરિણામની જે દિશા છે, એને ફરવા માટે એને એકવાર ક્યાં જાવું છે એ નક્કી કરી લેવું પડશે. આત્મજ્ઞાન કરવું છે તો શું કરવા કરવું છે ? આ પ્રશ્ન છે.

પહેલા આત્મજ્ઞાન કરીએ એમ કહો. પણ તારે આત્મજ્ઞાન શું કરવા કરવું છે? આ પ્રશ્ન છે. બહુ Practical side છે. તું બીજા ક્ષેત્રમાંથી આ ક્ષેત્રની અંદર આવ્યો. દુનિયાદારીના ક્ષેત્રમાં હતો એમાંથી તું ધર્મનું ક્ષેત્ર જે કહેવાય છે એવા કોઈ ક્ષેત્રમાં તે પ્રવેશ કર્યો છે, તો નક્કી તારું કોઈ ધ્યેય તો હોવું જ જોઈએ. કોઈ ને કોઈ ધ્યેય હોવું ઘટે છે. એને આચાર્ય મહારાજ એમ કહે છે, કે જો તારું મોક્ષનું ધ્યેય છે, તો તારો આત્મજ્ઞાનનો, આત્માને જાણવાનો પ્રકાર સફળ થશે. જો તારું ધ્યેય મોક્ષનું નથી, તો આત્માને જાણવાનો તારો પ્રકાર સફળ થવાનો કોઈ અવસર જ નથી, બની શકશે જ નહિ. આ પરિસ્થિતિ છે. વાત અહીંથી સિદ્ધાંતિક રીતે ખીલે બાંધેલી વાત છે. એકદમ ચોક્કસ કરેલી આ વાત છે. સૂત્રકર્તા આચાર્ય મહારાજે મૂળ ગાથામાં એ વિષય લીધો છે, કે મોક્ષાર્થીએ આમ કરવું. જો તું મોક્ષાર્થી ન હોય તો આમ કરવું એ કહેવાનું

પણ અમારે કારણ રહેતું નથી. એટલે તો પાછળ...

મુમુક્ષુ :- અહીંયાં બેઠા પછી બીજા વિચારો આવે તો એનો અર્થ એમ થયો કે ધ્યેય બાંધ્યું નથી.

પૂજ્ય ભાઈશ્રી :- તારું ધ્યેય નથી બાંધ્યું. તારું ધ્યેય બાંધ્યું હોય તો બીજા કામ કરતાં તને આ વિચાર આવી જશે. આખું Platform બદલાઈ જશે. તું સંસારાર્થી છે એ Platform ઉપર ઊભો છે એટલે આ વિચાર કરતાં કરતાં ત્યાં ઉપયોગ ચાલ્યો જાય છે. જો તારું ધ્યેય મોક્ષાર્થીનું હોય તો ઉદ્યના કાર્યો કરતા કરતા તારું આત્મા બાજુનું વલણ થઈ જશે. તને એના વિચાર આવશે, કે આ શું કરવા કરું છું ? ખાવ છું શું કરવા? રળું છું શું કરવા ? કમાવા શું કરવા જાવ છું? ફલાણું શું કરવા કરું છું ? આ શું કરવા કરું છું? આની પાછળ મારું ધ્યેય શું છે ? ધ્યેય જો આગળ રહેશે, તો તારી સર્વ ક્રિયા સાર્થક છે. એટલે તો 'શ્રીમદ્જી'એ લખ્યું, ખાવું છે તો આત્માર્થે, પીવું છે તો આત્માર્થે, રળવું છે તો આત્માર્થે, બોલવું છે તો આત્માર્થે, ઊઠવું છે તો આત્માર્થે, બેસવું છે તો આત્માર્થે. (એમ) કેટલા બોલ લીધા છે. આત્માર્થ એટલે આત્માના હિતને અર્થે એટલે કલ્યાણને અર્થે એટલે મોક્ષને અર્થે. એક જ વાત છે.

મુમુક્ષુ :- ... આત્મજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ પછી ધૂન ચાલતી રહેવી જોઈએને ?

પૂજ્ય ભાઈશ્રી :- એમ નહિ. પહેલા ધૂન ચાલે છે. પહેલા ધ્યેય બાંધે તો આ પ્રકાર ઊભો થાય છે. નહિતર વાંચતા-વાંચતા અને વિચારતા-વિચારતા ઉપયોગ છટકીને ક્યાંય ચાલ્યો જાશે. અને એણે જો ધ્યેય સાચું બાંધ્યું હશે તો સર્વ ક્રિયામાં એને ધ્યેય આગળ રહેશે.

ધ્યેય એક એવી ચીજ છે, કે એ અગ્રતા ધારણ કરે છે, મુખ્યતા ધારણ કરે છે. આગળ રહે છે. સર્વ ક્રિયામાં એ આગળ રહે છે. આનું પણ ધ્યેય શું ? ધ્યેયની સાથે સંબંધ શું ? પ્રયોજનની સાથે શું સંબંધ ? બસ. એ બધું પ્રયોજન અર્થે કરશે. પ્રયોજનને વિસરીને, વિસ્મરણ કરીને કાંઈ નહિ કરે. એવા મોક્ષાર્થીએ આત્માનું જ્ઞાન કરવું એમ કહે છે. ક્યા પ્રકારે કરવું એ વિધિ તો હવે આવશે. પણ એવા મોક્ષાર્થીએ

આત્માને જાણવો. પણ ચોખ્ખું કહ્યું છે કે નહિ ? કે મોક્ષાર્થી પુરુષે આત્માને જાણવો. એમ જ કહ્યું છે કે બીજું કાંઈ કહ્યું છે ? આચાર્ય મહારાજની વાત ગાથામાં પાકે પાયે છે કે નહિ ? કે નથી ? હવે એનો અર્થ અહીંયાં Practical જીવનમાં, પરિણમનમાં કેવી રીતે લાગુ પડે છે ? બસ એટલું જ વિચારવું જોઈએ. કહ્યું છે એમાં તો મિનમેખ નથી કોઈ. એમાં કોઈ ફેરફાર થાય એવું નથી.

સૂત્ર સિદ્ધાંતમાં જે કહ્યું છે, એ વાત તો ક્ષણે ક્ષણે આત્મામાં ડૂબીને, અનુભવમાં બોળીને કલમથી લખાવેલું છે. આ કલમ કઈ છે ? આ અનુભવમાં બોળેલી કલમ છે. એમાં તો કોઈ મિનમેખ થાય એવું નથી. હવે એ કેવી રીતે અહીંયાં વાસ્તવિકતામાં આવી શકાય છે એટલું જ વિચારવું જોઈએ.

વળી એનું કારણ છે, કે કેટલાક જીવો ધર્મના ક્ષેત્રમાં આવે છે ત્યારે એને જગતમાં આબરૂ કાઢવી હોય છે, કે હું ધર્મી છું, હું ધર્મની ક્રિયા કરવાવાળો છું, હું ત્યાગી છું, હું સાધુ છું, હું આચાર્ય છું, હું ફલાણો છું, આવો શ્રાવક છું, જે કાંઈ એને કલ્પના હોય એમાં એને જગતની આબરૂનો જ્યાં સવાલ છે, ત્યાં એનો ધ્રુવ કાંટો (છે). એને ધ્રુવ કાંટો કહ્યો છે. એ ધ્રુવ કાંટો એને કયો છે ? કે લોકદષ્ટિ એનો ધ્રુવ કાંટો છે. લોક ઉપર એની દષ્ટિ છે. લોકો મને કેવો જોશે ? લોકો મને કેવો જોઈ રહ્યા છે ? અત્યારે મને કેવો જોઈ રહ્યા છે અને મને ભવિષ્યમાં કેવો જોશે ? એટલે એની સર્વ ક્રિયાઓ પોતાને સારો દેખાડવા માટેની છે. આ સારો દેખાડવા માટે કરે છે, આત્માના કલ્યાણ માટે નહિ. બીજાની નજરમાં સારું દેખાડવા પોતાનું કાર્ય કરે છે. આત્માના કલ્યાણ માટે કાંઈ કરે છે એ વાત રહેતી નથી. એને અભિનિવેશ કહ્યો છે. શાસ્ત્રમાં અભિનિવેશ નામનો શબ્દ છે. અભિનિવેશ બે પ્રકારના છે. એક લૌકિક અભિનિવેશ અને એક શાસ્ત્રીય અભિનિવેશ. ઠીક!

મુમુક્ષુ :- શાસ્ત્રીય અભિનિવેશ! અભિનિવેશ શબ્દ સાંભળ્યો છે પણ શાસ્ત્રીય અભિનિવેશ ?

પૂજ્ય ભાઈશ્રી :- નથી સાંભળ્યું ? 'શ્રીમદ્જી'માં

તો બહુ ચોખ્ખું લખ્યું છે. 'શ્રીમદ્જી'માં તો આ શબ્દ બહુ સ્પષ્ટ આવ્યો છે. લૌકિક અભિનિવેશ અને શાસ્ત્રીય અભિનિવેશ. જેની લોકદષ્ટિ છે, લોકો મને સારો જાણે એને લૌકિક અભિનિવેશ કહે છે. અને સામાન્યપણે સર્વ સંસારી મનુષ્યોને એ પ્રકાર હોય જ છે. પછી કોઈ શરીરની સુંદરતાથી સારા દેખાડવા ચાહે છે, કપડા-દાગીનાથી સારા દેખાડવા ચાહે છે, મકાનથી સારા દેખાડવા ચાહે છે, મકાનમાં રહેલા સાધનો, મોટર, ગાડી, રાચરચીલું ફર્નિચર એનાથી સારા દેખાડવા ચાહે છે, પૈસાથી સારા દેખાડવા ચાહે છે, દાનાદિથી સારા દેખાડવા ચાહે છે, વેપાર-ધંધા કારખાનાથી મોટા દેખાડવા ચાહે છે. જગતમાં જેના જેનાથી મોટાઈ ગણાય છે, એ સર્વ મોટાઈથી મોટું થવું છે, એ બધા પ્રકાર લૌકિક અભિનિવેશમાં જાય છે. જે જે ચીજો અને વસ્તુઓ જગતમાં મોટાઈવાળી ગણાય છે, તેનાથી મોટાઈ ગણાવવી એ બધું લૌકિક અભિનિવેશમાં જાય છે. અને એ બધું છોડીને પણ શાસ્ત્રજ્ઞાનથી મોટાઈ દેખાડવી છે તે શાસ્ત્રીય અભિનિવેશમાં જાય છે. મારામાં જ્ઞાન ઘણું, એ શાસ્ત્રીય અભિનિવેશ છે. જ્ઞાનીએ કોઈ અજ્ઞાનીને છોડ્યા નથી. કેમકે એને તો સર્વ પ્રકારનું અજ્ઞાન મટાડવું છે. અને એ શાસ્ત્રીય અભિનિવેશમાં પણ પ્રશસ્ત અને અપ્રશસ્ત પ્રકારના બે શાસ્ત્રીય અભિનિવેશ છે. એ ખબર છે કે નહિ ? એ પણ નથી ખબર. 'જ્ઞાનામૃત'માં તો બહુ સ્પષ્ટ છે, આખો વિષય છે. એમાંથી જ લઈએ.

પ્રશસ્ત શાસ્ત્રીય અભિનિવેશ તો એ છે, કે જે શાસ્ત્રનું શાસ્ત્ર સંબંધિત માન થતા પણ કષાય બહુ તીવ્ર ન થાય. કષાયની મંદતા રહ્યા કરે. છતાં શાસ્ત્રજ્ઞાનના ક્ષયોપશમની મુખ્યતા થાય. અને એ દેખાડવાનો, એનાથી મોટાઈ રાખવાનો ભાવ રહ્યા કરે. એ પ્રશસ્ત શાસ્ત્રીય અભિનિવેશ છે. અને એક અપ્રશસ્ત શાસ્ત્રીય અભિનિવેશનો જે પ્રકાર છે એમાં પ્રશસ્ત શાસ્ત્રીય અભિનિવેશવાળા પણ કાંઈક ભૂલ ખાય છે. જે સૂક્ષ્મ ભૂલ એને હાથમાં આવતી નથી પણ પ્રશસ્તનો પ્રકાર પલટો મારીને અપ્રશસ્તમાં ચાલ્યો જાય છે. માઠો અભિનિવેશ થાય છે. એ અહીંયાં પત્રાંક

નં. ૬૬૧ છે.

મુમુક્ષુ :- શાસ્ત્રનો આધાર લઈને પોતાને...

પૂજ્ય ભાઈશ્રી :- નહિ. એ તો બહુ સરસ વિષય છે. પત્રાંક નંબર ૬૬૧ છે. એ સ્વચ્છંદના ભેદમાં છે. ૨૯મું વર્ષ છે. અને મુમુક્ષુતાની ભૂમિકામાં સ્વચ્છંદ નામનો એક જે મહાદોષ છે એના પેટા ભેદમાં આ અપ્રશસ્ત શાસ્ત્રીય અભિનિવેશ જાય છે.

અહીંયાં શાસ્ત્રીય અભિનિવેશની સામાન્ય પરિભાષા એ કરી છે, કે 'આત્માર્થ સિવાય,...' મોક્ષાર્થ સિવાય. આત્માર્થ સિવાય એટલે મોક્ષાર્થ સિવાય. અહીં આ પ્રતમાં ૫૦ નંબરનું પાનું છે. ૬૬૧. મારી પ્રતમાં. જૂની પ્રત છે. ૫૦ નંબરનું પાનું છે. 'આત્માર્થ સિવાય,...' એટલે આ મોક્ષાર્થનો જે Point ચાલે છે એ. 'આત્માર્થ સિવાય, શાસ્ત્રની જે જે પ્રકારે જીવે માન્યતા કરી...' અથવા શાસ્ત્ર વાંચીને જ્ઞાન મળ્યું તેની 'કૃતાર્થતા માની...' સંતોષ પામ્યો કે હા, આટલું તો મળ્યું. પહેલા નહોતું બેસતું હવે મને બેસે છે. ઠીક! લ્યો ચાલો આટલું તો આપણા હાથમાં આવ્યું, આટલું તો મળ્યું. એ કૃતાર્થતા કરી. બે બોલ લીધા છે. માન્યતા કરી. આત્માર્થ સિવાય શાસ્ત્ર સમજાયાની માન્યતા કરી, શાસ્ત્રને માનું છું એવી માન્યતા કરી કે વીતરાગના શાસ્ત્રો માનું છું. બીજા નથી માનતો. પણ એમાં એને આત્મકલ્યાણના બદલે બીજો હેતુ હોય (કે) હું તો સમજું છું પણ હવે મારે બીજાને સમજાવવા છે. તારો હેતુ ફરી ગયો, કહે છે. તારું પ્રયોજન ફરી ગયું. કૃતાર્થતા કરી, કે ઠીક છે. આટલું તો આવડે છે, આટલી તો ખબર છે, પહેલા નહોતું બેસતું હવે તો બેસે છે. 'તે સર્વ શાસ્ત્રીય અભિનિવેશ છે.' આટલો અર્થ કર્યો છે.

'સ્વચ્છંદતા ટળી નથી, અને સત્સમાગમનો યોગ પ્રાપ્ત થયો છે,...' એવા જીવની વાત લીધી, હોં! સત્સંગ મળ્યો છે એને, જ્ઞાનીનો સત્સંગ મળ્યો છે, જ્ઞાનીના ભેટા થયા છે, પણ હજી પોતાની વાત મુક્તો નથી. પોતે માને છે, વિચારે છે એને એ છોડતો નથી. 'તે યોગે પણ...' એટલે સત્સંગના યોગે પણ 'સ્વચ્છંદના નિર્વાહને અર્થે...' એને ખબર નથી. આ તો જ્ઞાની એની નાડ પકડે છે. 'સ્વચ્છંદના નિર્વાહને અર્થે શાસ્ત્રના કોઈ

એક વચનને બહુવચન જેવું જણાવી,...' કયાંક શાસ્ત્રના વચન ઉપર ભાર દઈને, કે આ તો આચાર્યનું શાસ્ત્ર છે. સમાગમ તો અવિરત સમ્યગ્દષ્ટિનો છે. હું તો આચાર્યના શાસ્ત્રો ઘરે વાંચું છું. મને તો ચોથા, પાંચમા ગુણસ્થાનવાળા કરતા આચાર્યના વચનો સાથે મને વધારે બોધનું કારણ બને છે, મને વધારે એમાં રસ પડે છે. એને 'બહુવચન જેવું જણાવી, છે મુખ્ય સાધન...' જણાવી ત્યાં કોમા લીધો.

'છે મુખ્ય સાધન એવો સત્સમાગમ...' એમ. બન્ને વચ્ચે સત્સમાગમ તો મુખ્ય સાધન છે. શાસ્ત્ર અને સત્પુરુષના યોગ એ બન્ને વચ્ચે સત્પુરુષનો યોગ એ મુખ્ય સાધન છે, તેના 'સમાન કે તેથી વિશેષ ભાર...' તેથી વિશેષ ભાર મૂકે એ તો અપ્રશસ્ત શાસ્ત્રીય અભિનિવેશમાં જાય જ છે, પણ બરાબરી કરે તો પણ, એમ કહે છે અહીં તો, તેના સમાન ભાર મૂકે તો પણ 'તે જીવને 'અપ્રશસ્ત શાસ્ત્રીય અભિનિવેશ' છે.' એવા જીવને પ્રશસ્ત શાસ્ત્રીય અભિનિવેશ નથી, પણ અપ્રશસ્ત શાસ્ત્રીય અભિનિવેશ છે. આવી વાત લીધી છે.

'શ્રીમદ્જી' આવું કાઢી શકે. આ એમની શક્તિ છે. ગજબ વાત લખી છે ! કેટલા વિચારણાના ઊંડે તળિયે જઈને એમણે આ વાત ખોજી છે, કે અનેક પ્રકારના જીવોને એને ખ્યાલ હોય કે ન હોય પણ સમ્યગ્જ્ઞાનની નિર્મળતામાં આ બધા ફોટા પડે છે. અરે...રે...! શું થાય આ ? સત્શાસ્ત્રને હાથમાં રાખે છે, આચાર્યના શાસ્ત્રને હાથમાં રાખે છે અને જ્ઞાનીનો પ્રત્યક્ષ સમાગમ મળે એની ઉપેક્ષા કરે છે ? કહે છે એ અપ્રશસ્ત શાસ્ત્રીય અભિનિવેશ છે. એવી સત્સમાગમની ઉપેક્ષા કરવી એ શાસ્ત્રીય અભિનિવેશ નહિ પણ અપ્રશસ્ત શાસ્ત્રીય અભિનિવેશ છે. એટલું આમાંથી કાઢ્યું છે.

કહે છે, કે અમારા ખ્યાલમાં છે કે આત્મા સહજ સમજવા અર્થે શાસ્ત્રો ઉપકારી છે એ અમારા ખ્યાલમાં છે. અભિનિવેશની આ વાત કરીએ છીએ ત્યારે પણ અમારા ખ્યાલમાં છે, કે આત્મા સમજવા અર્થે શાસ્ત્રો ઉપકારી છે. પણ કોને ? કે સ્વચ્છંદરહિત પુરુષને. તારો

સ્વચ્છંદ ગળી ગયો હોય. સ્વચ્છંદનો અર્થ શું છે ખબર છે ? એ પણ પોતે ૨૫૪ પત્રાંકમાં વ્યાખ્યા કરી છે. અપક્ષપાતપણે પોતાના દોષને જાણે તેને સ્વચ્છંદ ઘટે છે, સ્વચ્છંદ મટે છે. અપક્ષપાતપણે. ત્યાં એવી પરિભાષા કરી છે. અપક્ષપાતપણે-જરાય આ મારો દોષ છે એટલે વાંધો નહિ અથવા ભૂમિકાનો દોષ છે, હજી તો અજ્ઞાની છું, હજી તો શ્રાવક છું. માટે આટલો રાગ હોય તો થાય, આટલો ક્રોધ થઈ આવે તો વાંધો નહિ. એને પક્ષપાત છે. જેને પોતાના દોષનો પક્ષપાત છે એને તો સ્વચ્છંદ છે. બીજાના દોષનો પક્ષપાત છે એને તીવ્ર સ્વચ્છંદ છે. કારણ કે એ દોષને પડખે ચડે છે.

મુમુક્ષુ :- પોતાનામાં દોષ હોય તો જ બીજાને સમર્થન કરે ને ? એવી રીતે પક્ષપાત કરે છે ?

પૂજ્ય ભાઈશ્રી :- જે બીજાના દોષને પણ સમર્થન કરે એ પોતાના દોષને તો જોવાનો જ ક્યાં છે ? અપક્ષપાત એનો ક્યાં રહેશે ? એને તો ઘણો પક્ષપાત પોતાના દોષનો થઈ ગયા પછી, આગળ વધીને એ બીજાના દોષનો પક્ષપાત કરે છે. એમાં વાંધો નહિ, એટલો વાંધો નહિ, એટલો વાંધો નહિ, એમ તો હોય, એવું તો થાય. એ સ્વચ્છંદ એવી ચીજ છે કે એ નજરે ચડવો મુશ્કેલ છે. માનની પ્રકૃતિ છે ને ? માનના પેટામાં જાય છે. ક્રોધ, માન, માયા, લોભ છે, એમાં જેમ માન નથી પકડાતું એમ એના પેટા ભેદની આ સ્વચ્છંદ નામની પ્રકૃતિ છે એ પણ પકડાતી નથી. એટલા માટે 'શ્રીમદ્જી'એ બહુ સુંદર રસ્તો એનો બતાવ્યો, કે 'માનાદિક શત્રુ મહા નિજ છંદે ન મરાય, જાતા સદ્ગુરુ ચરણમાં અલ્પ પ્રયાસે જાય.' એને વિચાર પણ નથી કરવો પડતો કે મારું માન ટાળું કે ન ટાળું, જ્યાં એણે શરણ પકડ્યું, કે બસ. આપને સર્વસ્વ માન્યા છે અને અહીંથી મારું કલ્યાણ કરવું છે. એ સેવક થઈ ગયો. કાલે ન કીધું ? ગુણસમુદ્ર પ્રગટવાનું કારણ છે. પતી ગયું. એને માન પણ નહિ થાય અને એને સ્વચ્છંદ પણ નહિ થાય. વગર પ્રયાસે ચાલ્યા જશે, અલ્પ પ્રયાસે ચાલ્યા જશે. નહિતર થાશે તો એને ખબર નહિ પડે. આ પરિસ્થિતિ ઊભી થાશે. એટલે બધી યુક્તિઓ બતાવી છે. દોષ ટળવાની એ બધી યુક્તિઓ બતાવી છે.

શાસ્ત્ર કોને ઉપકારી છે? કે 'સ્વચ્છંદરહિત પુરુષને;...' એટલો લક્ષ રાખી અને સ્વચ્છંદ બાજુની જાગૃતિ રાખીને 'સત્શાસ્ત્ર વિચારાય...' એટલે આત્માર્થે એ શાસ્ત્ર વિચારાય 'તો તે શાસ્ત્રીય અભિનિવેશ ગણવા યોગ્ય નથી.' આ અભિનિવેશના વિષયમાં ૬૬૧મો પત્ર છે.

મુમુક્ષુ :- સ્વચ્છંદ છૂપો ચોર છે.

પૂજ્ય ભાઈશ્રી :- આ મોક્ષાર્થોનું પ્રકરણ છે. એમાં ઘણા મુદ્દાઓ વિચારવા (જેવા છે). મોક્ષાર્થો જીવ હોય કેવો ? એ મોક્ષનું ધ્યેય બાંધે, એની વિચારણા કેવી હોય ? એનું શાસ્ત્ર વાંચન કેવું હોય ? (સ્વરૂપ પ્રાપ્તિની) એની ભાવના અને લગની કેવી હોય ? આત્માને નિર્ણય ન થયો હોય તો એની જિજ્ઞાસા કેવી હોય ? એ બધું એની અંદર આવે છે. જો એક મોક્ષાર્થો હોય તો. નહિતર એકેય વાત રહેતી નથી. એ જિજ્ઞાસાનો તો વિષય આવ્યો હતો.

મુમુક્ષુ :- કાયદા બહુ કડક છે.

પૂજ્ય ભાઈશ્રી :- કાયદાઓ તો વસ્તુસ્થિતિને જાહેર કરે છે. કોઈના કરેલા ક્યાં છે આ ? કોઈએ કર્યા નથી. Indian penal code ની જેમ આ બનાવેલા નથી. આ તો વસ્તુસ્થિતિને પ્રસિદ્ધ કરનારા નિયમો છે. તમારે વસ્તુની સ્થિતિ તોડવી છે ? તમારું માથું તૂટી જશે, ભાઈ ! વસ્તુસ્થિતિ નહિ તૂટે. કોઈ એમ કહે કે વજ સાથે એવું માથું પછાડું ને વજને તોડી નાખું. અરે..! તિરાડ પણ નહિ પડે, ઘોબો પણ નહિ પડે. તારું (માથું) ફૂટી જશે, ભાઈ ! વસ્તુસ્થિતિ તો વજ છે.

એ તો 'બહેનશ્રી' કહે છે, કે ચૌદ બ્રહ્માંડ ફરશે. વસ્તુસ્થિતિ અંદરની ભાવનાઓ એ તો વસ્તુસ્થિતિ છે. શું કહ્યું ? અંદરની આત્મપ્રાપ્તિની ચૈતન્યમાંથી ઊપજેલી ચૈતન્યની ભાવના, ચૈતન્ય પ્રાપ્તિની ભાવના એ તો એક એવી વસ્તુસ્થિતિ છે, કે અનુભવ ન થાય તો ચૌદ બ્રહ્માંડને ફરવું પડે. ચૌદ બ્રહ્માંડ ફરે નહિ તો આ પણ ફરે નહિ. પણ ચૌદ બ્રહ્માંડને ફરવાની વાત ભલે એક વાર મંજૂર થાય, આ તો મંજૂર થાય એવું નથી. શું જોર છે ! એ તો બહુ જોરથી મોક્ષમાર્ગમાં આવેલા છે.

૩૦૮ બોલ છે, કે 'પોતાની પાછળ વિકરાળ વાઘ

ઝપટું મારતો દોડતો આવતો હોય તો પોતે કેવી દોટ મૂકે ! એ વિસામો ખાવા ઊભો રહેતો હશે ! એમ આ કાળ ઝપટું મારતો ચાલ્યો આવે છે અને અંદર કામ કરવાના ઘણા છે એમ પોતાને લાગવું જોઈએ.' આમ છે. ઝપટ કરવી હોય એનું કામ છે. ૧૯૦. ત્યાં વાઘનું દષ્ટાંત લીધું ને ? પાછળ વાઘ પડ્યો છે.

અહીં (કહે છે), 'સિંહ ચારે કોર ફરતાં હોય ને જેમ ઊંઘ ન આવે, હથિયારબંધ પોલીસ પોતાને મારવા ફરતો હોય ને જેમ ઊંઘ ન આવે તેમ તત્ત્વ નિર્ણય ન કરે ત્યાં સુધી એને સુખેથી ઊંઘ ન આવે.' વ્યાખ્યાન સાંભળતા સાંભળતા ઊંઘ આવે એ તો પ્રશ્ન છે જ નહિ. એનો તો વિચાર કરવો નહિ, પણ અહીંયાં તો એમ કહે છે, કે ઊંઘ આવવાના કાળે એને ઊંઘ ન આવે. નહિતર એ તો ઉદીરણાનો પ્રકાર છે. એને ન જોઈતી હોય તો આવે. ઉદીરણાનો પ્રકાર છે. ઉદયની ઉદીરણા લીધી છે. દર્શનાવરણીની. બીજું કામ કરતો હોય તો ઊંઘ આવે. કાંઈક વાંચવું હોય તો વાંચી શકે નહિ. ઊંઘ એવી ચીજ છે. ઊંઘ આવે તો સૂઈ જવું પડશે એમ કહે.

અહીંયાં કહે છે, કે એ હટી જાય છે. જ્યાં અંદરમાં તત્ત્વનો નિર્ણય કરવો છે કે મારું સ્વરૂપ કેવું ? સ્વ તત્ત્વનો નિર્ણય કરવો છે. તત્ત્વનો નિર્ણય એટલે સ્વ-સ્વરૂપનો નિર્ણય કરવો છે. એ જ્યાં સુધી નિર્ણય ન થાય, ત્યાં સુધી એની જિજ્ઞાસાની બળવત્તરતા એટલી ઉત્પન્ન થાય કે ક્યાંય ચેન પડે નહિ. પૂછવું જોઈએ કે આવું થયું છે કોઈ વાર ? નહિતર આરોવારો નથી. એમ નથી કે કલાક, બે કલાક એવું વર્ષો સુધી સ્વાધ્યાય અને સાંભળવાનું મળે. અથવા અનેક જગ્યાએથી, અનેક જાણકારો પાસેથી જાણવાનું મળે, અનેક શાસ્ત્રોમાંથી જાણવાનું મળે એટલે તત્ત્વનો નિર્ણય થઈ જશે એમ છે નહિ. નિર્ણયનો અજંપો આવશે ત્યારે નિર્ણય થાશે. અને એ અજંપામાં તારી ઊંઘ ઊડી જવી જોઈએ.

બહારમાં એક સ્વજનનું મૃત્યુ થાય તો મહિનાઓ ને દિવસો અને વર્ષો સુધી એને રડવું આવે છે. સાંભરે ત્યાં રડે. અને અહીંયાં પરમાત્માનો વિયોગ છે એનું એને કાંઈ લાગતું નથી. અને કહે છે કે મારે આત્મા

જોઈએ છે. (કહે છે) કે હાલ-હાલ હવે, તારો કોઈ ક્લાસ છે નહિ. એ વિષય છે. એને પૂછવું જોઈએ કે રડ્યો છો કોઈ દિવસ ? કે નથી કાંઈ. કાંઈ નથી લાગતું ? તો કહે છે જ નહિ કાંઈ. હજી તારું ધ્યેય બંધાણું નથી અને તારી આત્મા ઉપરની જે પ્રીતિ જોઈએ એ ઉત્પન્ન થઈ નથી. બસ. આ તો મોક્ષાર્થનું પ્રકરણ છે ને ! આ મોક્ષાર્થની તૈયારી શું ચીજ છે (એ વાત છે). આગળ ઘણી વાતો આવી ગઈ છે, એને સંબંધ છે.

'જગતની આબરૂ, કીર્તિ, પૈસા...'ની લાલચ. ઠીક છે આટલો લાભ તો થશે. આટલો સંબંધ છે. આ સંપ્રદાયમાં ફલાણા મોટા શેઠિયા છે. આપણે વળી ભળ્યા છીએ તો ઠીક છે. સંબંધો બંધાણા છે. વળી કાંઈક વેપારનો મોકો હશે, કાંઈક તક મળશે, કાંઈક લાભ મળશે, જરૂર પડશે તો મદદ કરશે, સાધર્મી જાણીને મદદ કરશે. કહે છે, કે એને મોક્ષનું, આત્માનું, આત્માર્થનું કોઈ પ્રયોજન છે નહિ. એ વળી એણે નવી દુકાન માંડી. એણે શું કર્યું છે ? એણે દુકાન માંડી છે.

અરે...! 'સ્વર્ગનો અર્થ...' કાંઈ નહિ તો શુભભાવ તો થાશે. કાં તો ભગવાનના રોજ દર્શન કરીશ અને દુકાને જઈશ તો વકરો સારો ચાલશે. ખોટ-ખાપણ જતી હોય તો નહિ જાય. શુભથી તો અશુભ ઠેલાય છે કે નહિ ? કાંઈક પાપ કર્યા હશે તો પુણ્યની Reverse entry તો પડે. તને તો પુણ્યની પણ નહિ પડે જા. તારો પહેલેથી અભિપ્રાય જ બુરો છે. મલિન આશયથી તું ભગવાનના દર્શન કરવા આવ્યો છો. તને તો એ પુણ્ય પણ થાતું નથી. પાપ બંધાય છે, ત્યાં પણ તને પાપ બંધાય છે.

મુમુક્ષુ :- મિથ્યાત્વનું પાપ ચાલુ છે ?

પૂજ્ય ભાઈશ્રી :- મિથ્યાત્વનું ચાલું છે અને આ બધું સરખું રહે અને સારું જોઈએ છે, અનુકૂળતા રહે એ પાપ પણ એનું ચાલું છે. પાપનો જ પોટલો છે એ બધો, બીજું કાંઈ છે નહિ. અને એમ થવાનું કારણ છે, કે અનું ધ્યેય ઓલું છે. વીતરાગની સામે ઉભા ઉભા એમ કેમ થાય છે ? કે મને પુણ્ય બંધાય તો સારું અને આનું ફળ મળે તો સારું. કે એનું ધ્યેય જ મોક્ષનું નથી. એનું ધ્યેય અનાદિથી જે સંસારનું છે એમાં

એમ થયા વિના રહે નહિ. એમ જ થાય. એ વિચારવું પણ ન પડે. વગર વિચારે એવો જ ભાવ એને આવે. એને માટે કાંઈ વિચારણા કરવી પડે છે ? એમ જ થાય.

મુમુક્ષુ :- ધ્યેય માટે શું કરવું ?

પૂજ્ય ભાઈશ્રી :- ધ્યેયમાં તો બીજું શું કરવાનું હોય ? ધ્યેય એટલે તું આવ્યો શું કરવા ? એ નક્કી કર. અહીંયાં શું કરવા આવ્યો ? આ વીતરાગમાર્ગના ક્ષેત્રમાં શા માટે તારી હયાતી છે તે તપાસ કર. અંદરમાં ધ્યેય શું છે ? પ્રયોજન શું છે ? નક્કી કર. જો પરિપૂર્ણ નિર્દોષતાનું પ્રયોજન ન હોય તો એ આત્માર્થ સિવાયના કોઈપણ પ્રકારનો અર્થ છે, પ્રયોજન છે અને એમાંથી બીજા લોચા અને ગડબડ ઊભી થયા વિના રહેશે નહિ.

‘સ્વર્ગનો અર્થ નથી...’ શુભભાવ બંધાશે અને એના ફળ મળશે, એના ઉત્કૃષ્ટ પુણ્યનું ફળ ચાર ગતિમાં સ્વર્ગ છે. સ્વર્ગ તો મળશે. આમેય પરિભ્રમણ કરીએ અને નરક, તિર્યચમાં જઈએ એના કરતા સ્વર્ગમાં જઈએ તો સારું ને. મનુષ્ય અને સ્વર્ગ... મનુષ્ય અને સ્વર્ગ... કે નહિ રહે તને. સ્વર્ગમાં જઈશ તો પાછો એકેન્દ્રિયમાં જતા વાર લાગશે નહિ. કેમકે ત્યાં તો તું લપટાઈ જઈશ. અહીં કરતા ત્યાં તો બાહ્ય સાધનોની, ભોગઉપભોગની ઘણી ગડબડ છે. ત્યાં તારા રસ એટલા બધા તીવ્ર થશે. અહીંયાં પણ જરા સરખું થાય તો રસ તીવ્ર થાય છે કે નહિ ? એટલા તીવ્ર રસ થશે કે એકેન્દ્રિયમાં ચાલ્યો જઈશ.

‘તે મોક્ષાર્થી છે.’ જેને આ જગતમાંથી કાંઈ જોઈતું નથી. ‘બહેનશ્રી’એ આ વિષય એમાંથી કાઢ્યો છે. ખાસ પાત્રતા કોની છે ? એમ કરીને (વાત કરી છે). સમ્યગ્દર્શનને યોગ્ય એવી ખાસ પાત્રતા, શાસ્ત્ર પરિભાષાએ એને મોક્ષાર્થી કહ્યો, એક જ વાત છે. જેને આ જગતમાંથી કાંઈ જોઈતું નથી. એકલો જેને આત્મા (જોઈએ છે) અને આત્મહિત કરવું છે એક જ વાત છે. એ વર્તમાન પાત્ર છે. પાત્રતા બે પ્રકારે : વર્તમાન અને ગર્ભિત. ગર્ભિત પાત્રતા તો જ્યારે એ વર્તમાન પાત્રતામાં આવશે ત્યારે કામ કરશે. ત્યાં સુધી ગર્ભિત પાત્રતાનો કોઈ લાભ છે નહિ. એ તો જ્ઞાનીના જ્ઞાનનો

વિષય છે. પણ જ્યારે જીવને વર્તમાન પાત્રતા હોય છે ત્યારે એને જે કોઈ સત્ના સંસ્કારનો યોગ બને છે ત્યારે એ ઝીલે છે. ત્યાં સુધી એ ઝીલતો નથી. અને એ ક્યારે જગ્યા થાય છે ? કે એને એક જ ધ્યેય થાય ત્યારે. કાંઈ ન જોઈતું હોય ત્યારે.

‘ગુરુદેવ’ અનુમોદન કરતા ને ? કોઈ નિવૃત્તિ લે તો અનુમોદન કરતા. (આપણા એક મુમુક્ષુને માટે કહેતા) નાની ઉંમરમાં નિવૃત્તિ લીધી. બીજાને પણ એની અંદર સંકેત કરે છે, કે ધ્યેય આ બાંધવા જેવું છે. નિવૃત્તિના બહાને કહેવાય છે, કે જુઓ! આણે નિવૃત્તિ લીધી. તમે ૬૦ વર્ષ લેતા નથી, આણે ૪૦ વર્ષ લીધી. એનો અર્થ એ છે કે ધ્યેય આ બાંધવા જેવું છે. બ્રહ્મચર્ય લે તો એનું અનુમોદન કરે છે. કેમ ? કે બ્રહ્મચર્ય રાખતા એને આરંભ પરિગ્રહ ઘટે છે. અબ્રહ્મચર્યવાળાને આરંભ-પરિગ્રહ વધે છે. જેને આત્માનું ધ્યેય છે એને ધ્યેયને સુસંગત એવા જેટલા કોઈ પ્રકાર છે એ બધાની બહારમાં પણ અનુમોદના કરવામાં આવે છે. મૂળ વાત તો અંદરની છે, પણ બહારમાં કોઈ એવું કદમ ઉઠાવે, એવું પગલું ભરે તો એને અનુમોદન કરવામાં આવે છે. એથી વિરુદ્ધ કદમ ભરે તો એનું અનુમોદન કરવામાં આવતું નથી. એમ છે. એની પાછળ આ કારણ છે.

‘જે એકમાત્ર પૂર્ણાનંદની પ્રાપ્તિ અને રાગદ્વેષના દુઃખના વ્યયનો અર્થી છે તે મોક્ષાર્થી છે.’ આનંદની પ્રાપ્તિ ન કહ્યું. ‘જે એકમાત્ર પૂર્ણાનંદની પ્રાપ્તિ...’ કેમ કે આ ધ્યેય છે એ આદર્શના સ્થાને છે, એ સાધ્યના સ્થાને છે અને સાધ્ય અપૂર્ણ ન હોય, આદર્શ અપૂર્ણ ન હોય. થોડોક દોષ અને થોડીક નિર્દોષતા એવો આદર્શ હોઈ શકે નહિ. આદર્શ પરિપૂર્ણ હોય. એ મોક્ષાર્થી છે.

મુમુક્ષુ :- ‘શ્રીમદ્જી’ એ કહ્યું, કામ એક આત્માર્થનું...

પૂજ્ય ભાઈશ્રી :- ‘બીજો નહિ મન રોગ.’ મનનો રોગ થઈ જાય. ચેન પડે નહિ. મનરોગ થાય ત્યારે બેચેની થાય, ઊંઘ બગડે, બધું થાય. એ બધા મનના રોગના લક્ષણો છે. કોઈ વખત શારીરિક રોગના કારણે પણ ઊંઘ બગડે છે. પણ એમાં Mind disturb થયું છે એ વાત સાથોસાથ સુસંગત છે.

કહે છે, કે કામ એક મોક્ષાર્થનું, આત્માર્થનું. બીજો નહિ મનરોગ. આત્માર્થ કહો, મોક્ષાર્થ કહો એક જ વાત છે. એવો મોક્ષાર્થી થનાર જીવ, મોક્ષાર્થી થયો છે એવો જીવ (એની) 'પહેલામાં પહેલી ક્રિયા શું ?' એની પહેલામાં પહેલી અંતરંગ ક્રિયા તે શું ? આત્માની ક્રિયા આત્મામાં અંતરંગમાં થાય છે. 'કે સર્વપ્રકારે ભેદજ્ઞાનમાં પ્રવિણતા કરવી એ પ્રથમ ક્રિયા છે.' શું કહે છે ? ભેદજ્ઞાનનું કાર્ય કરવું, ભેદજ્ઞાનની ક્રિયા કરવી એ સૌ પ્રથમ ક્રિયા છે. શાસ્ત્ર વાંચવું અને શાસ્ત્ર સાંભળવું એ પ્રથમ ક્રિયા છે એમ કહ્યું નથી. જાત્રા કરવી અને દાન દેવું તે પ્રથમ ક્રિયા છે એમ કહ્યું નથી. કે બીજી કોઈ ક્રિયા કરવી એ પ્રથમ ક્રિયા છે એવું કાંઈ કહ્યું નથી. 'પહેલામાં પહેલી ક્રિયા શું ?' કેટલું 'ગુરુદેવે' ખોલીને મૂકી દીધું. સ્પષ્ટ કરીને. 'કે સર્વપ્રકારે...' પૂરું, ચોખ્ખું ભેદજ્ઞાન કરવું અને એ ભેદજ્ઞાનની ક્રિયામાં કુશળતા પ્રાપ્ત કરવી. પ્રવિણતા એટલે કુશળતા. એ કાર્યમાં Expert થવું જોઈએ એમ કહે છે. નિપુણ થવું જોઈએ, નિષ્ણાંત થવું જોઈએ. અને જે કાર્યમાં જેને નિપુણ થવું છે, નિષ્ણાંત થવું છે, કુશળ થવું છે. એને એની Practice કરવી અનિવાર્ય છે. એ વગર કોઈ રીતે તે કાર્યની અંદર કુશળતા અને પ્રવિણતા આવે નહિ. એ પણ જગતમાં શું છે? નોકરીએ રાખે તો કેટલા વર્ષનો અનુભવ એ વાત મુખ્ય છે. Interview લે છે કે નહિ ? આ કામ માટે તમારો અનુભવ શું ? ભણ્યો હોય તો એના Certificate ને એક કોર મૂકે. અનુભવ શું છે ? કેમકે અનુભવ છે એ એક એવી શીક્ષા છે કે જેની પાસે બીજી બધી શીક્ષા ગૌણ છે. સર્વોત્કૃષ્ટ શીક્ષા છે. એટલે ભેદજ્ઞાન કરવાના પ્રયોગનો વારંવાર અભ્યાસ કરવો, ભિન્ન પડવાનો વારંવાર અભ્યાસ કરવો. એવા વારંવારના અભ્યાસથી ભેદજ્ઞાનમાં એણે પ્રથમ તો કુશળતા, નિપુણપણું પ્રાપ્ત કરવું એ એની પહેલામાં પહેલી ક્રિયા છે. સર્વ શક્તિને એને અહીંયાં લગાડવી. બીજું ભલે કાંઈ ન આવડે. કાંઈ ખબર ન પડે. તિર્યંચે અંદરમાં ભેદજ્ઞાન કર્યું, સમ્યગ્દર્શન અને પંચમ ગુણસ્થાન સુધીની સ્વરૂપ સ્થિરતાની સ્થિતિ આવી. દ્રવ્યલિંગી મુનિએ અગિયાર અંગ, નવ પૂર્વ અને

પંચ મહાવ્રત સહિતના દીક્ષા ધારણ કરીને અઠ્યાવીશ મૂળગુણ જિનોક્ત વ્યવહાર નિરતિયાર પાળ્યા. નિર્દોષ. અતિયાર દોષ ન લગાવ્યો. છતાં અંદરમાં ભેદજ્ઞાન ન થયું, ભેદજ્ઞાન ન કર્યું, તો એ શુભરાગને અભેદ કરીને ચાલ્યો. શું કર્યું ? શુભરાગને અભેદ કરીને ચાલ્યો. એ વાત રહી ગઈ. શું રહી ગયું ? કે આ રહી ગયું.

'સમયસાર'ના બંધ અધિકારમાં એ ગાથા છે. દ્રવ્યલિંગી મુનિએ બહારમાં જોઈએ તો એણે શાસ્ત્રજ્ઞાન પણ ઘણું કર્યું છે અને ક્રિયાઓ પણ ઘણી કરી છે. ધર્મના ક્ષેત્રમાં સામાન્ય રીતે જ્ઞાનક્રિયા અને ત્યાગની ક્રિયા આ બે ક્રિયાથી લોકો ધર્મના રસ્તે જાય છે એવો જગતનો ખ્યાલ આવે છે. બે પ્રકારની ક્રિયા. એક જ્ઞાનની ક્રિયા અને એક ત્યાગની ક્રિયા. કહે છે, કે એ જ્ઞાનની ક્રિયામાં અગિયાર અંગ અને નવ પૂર્વ સુધી ગયો. ત્યાગની ક્રિયામાં જિનદીક્ષા અંગીકાર કરીને પંચ મહાવ્રત, અઠ્યાવીશ મૂળગુણ નિરતિયાર પાળ્યા. પ્રાણ જાય તો પણ દ્રવ્યલિંગી ચોખ્ખો હોય તો ઉદ્દેશિક આહારનો કણિયો ન લે. પાણીનું બિંદુ ન લે. પ્રાણ જાય તો ભલે જાય. (એ) શુભભાવના ફળમાં નવમી ઐવેયકે ઊપજે. રીતસરનો ચોખ્ખો શુભભાવ છે. અંદરમાં ભેદજ્ઞાન નથી. એ ક્રિયામાં એ રસ્તે ચડ્યો નથી. એટલે તો 'સમયસાર'માં એ વાત લીધી છે. કે શાસ્ત્રના ભણતરનું ફળ શું ? પ્રયોજન શું ? કે જ્ઞાનમય ભિન્ન આત્માનું જ્ઞાન કરવું તે શાસ્ત્ર ભણતરનું પ્રયોજન છે. બંધ અધિકારમાં આવા શબ્દો પડ્યા છે. એ જ્યાં સુધી ન કરે, ભિન્ન ન પડે. ત્યાં સુધી જેટલું કાંઈ ધર્મના બહાને કોઈપણ નિમિત્તે, કોઈપણ ક્રિયાએ કરાય છે તે એને ધર્મનું સાધન થતું નથી. આ વિષય સ્પષ્ટ છે.

આ ૧૭-૧૮ ગાથામાં આબાળ-ગોપાળને ધર્મ કેમ પ્રાપ્ત થશે એ વિષય ઉપાડ્યો છે. ટીકાકાર આચાર્ય મહારાજે એ શબ્દ વાપર્યો છે, કે આબાળ-ગોપાળને જ્ઞાન લક્ષણથી જ્ઞાનમય આત્મા ભિન્ન અનુભવમાં આવે તો એને સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રરૂપી ધર્મ પ્રગટે છે. નહિતર એને ધર્મ પ્રગટતો નથી. મોક્ષમાર્ગરૂપી ધર્મ તો આટલો જ છે સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રાણી. એ સિવાય, એ સિવાયનું જેટલું બહાર છે તે ધર્મથી બહાર છે.

પછી ધર્મ કહેવાય તો તે ઉપચારથી કહેવામાં આવે છે.

મુમુક્ષુ :- રાગની ઉપસ્થિતિ છે એમાં જ્ઞાન એકતા કરે છે એ મૂળ દોષ છે ને ?

પૂજ્ય ભાઈશ્રી :- મૂળ દોષ એ જ ચાલ્યો આવ્યો છે. જ્યાં સુધી ભેદજ્ઞાન ન કરે, ત્યારે શાસ્ત્રના નિમિત્તે શુભરાગ થાય છે અને ત્યાગના નિમિત્તે શુભરાગ થાય છે એની સાથે એકત્વ કરે છે. એ શુભરાગને જ આત્મા માને છે. તે ઉત્પન્ન થયેલા તે કાળના શુભરાગ જેવડો-જેટલો હું એમ જ પોતાને વેદે છે, અનુભવે છે. પણ એ પોતાના શુદ્ધાત્માનું અસ્તિત્વ હોવા છતાં અને એ શુદ્ધાત્મામાં અનંત ગુણ-રત્નો હોવા છતાં એની હયાતીને એ સ્વીકારતો નથી, એને વેદતો નથી, અનુભવતો નથી. એની ઉપેક્ષા કરે છે. બીજી રીતે કહીએ તો એની ઉપેક્ષા કરે છે, એનો તિરસ્કાર કરે છે, એનો અનાદર કરે છે. આ પરિસ્થિતિ છે.

મુમુક્ષુ :- રાગને પોતાનું સર્વસ્વ માને છે ને.

પૂજ્ય ભાઈશ્રી :- સર્વસ્વ થઈ જ પડ્યો છે. રાગ સર્વસ્વ થઈ ગયો છે. અજ્ઞાની, મિથ્યાદષ્ટિ જીવને રાગ જ સર્વસ્વ થઈ પડ્યો છે. પછી રાગના વિષયો ગમે તે હો. પછી વધારે વકરે છે ત્યારે વિષયોની પક્કડ પણ થાય છે. પણ મૂળમાં રાગ સર્વસ્વ થઈ પડ્યો છે.

‘સમયસાર’માં ટપમો એ કળશ છે, કે વિકલ્પ ઊઠ્યો કે વિકલ્પનો કર્તા હું. ‘વિકલ્પ: કર્મ કેવલમ્’ એમ કરીને લીધું છે. ‘સમયસાર’માં ટપમો કળશ છે. કર્તા-કર્મ અધિકાર છે. આ કળશ ઉપરનું ‘ગુરુદેવશ્રી’નું વ્યાખ્યાન બહુ સરસ આવેલું. સૂક્ષ્મ ભાવો ઘણા ખોલતા ને ! ‘વિકલ્પક: પરં કર્તા’ પરમ કર્તા થઈ ગયો છે.

‘વિકલ્પક: પરં કર્તા વિકલ્પ: કર્મ કેવલમ્ ન જાતુ કર્તૃકર્મત્વં સવિકલ્પસ્ય નશ્યતિ।।૧૫।।’

આટલું પદ છે. વિકલ્પ કરનાર જ કેવળ કર્તા છે. ‘વિકલ્પક:’ વિકલ્પ કરનારો જ એનો પરમ કર્તા છે, પૂરો કર્તા છે. અભેદ થઈને કરે છે. કર્તાકર્મ એક અભેદમાં થાય છે. અને એ વિકલ્પ જ એનું કેવળ કર્મ છે. સર્વસ્વ, કેવળ-માત્ર એટલું જ એનું કર્મ છે. જે જીવ આ પ્રકારે વિકલ્પસહિત છે તેનું વિકલ્પનું કર્તૃત્વ એટલે કર્તા-કર્મપણું કદિ નાશ પામતું નથી. એ કાયમ

નિરંતર વિકલ્પ કર્યા કરશે. કેમકે એને વિકલ્પનું કર્તા-કર્મપણું સદાય ચાલુ રહેશે. એ એનો પરમ કર્તા થઈને એનું પરમ કર્તૃત્વ સમજે છે. એટલે એ એને છોડવાનો નથી. એક ટુકડો છે. ઘણા ભાવ એની અંદર કાઢ્યા છે. હવે તો આ બધા પ્રવચનો પ્રસિદ્ધ થઈ ગયા છે. પ્રવચન રત્નાકરમાં. ઘણી વાતો એમાં ખોલી છે.

મુમુક્ષુ :- ટપમો કળશ છે ને ?

પૂજ્ય ભાઈશ્રી :- ટપમો કળશ છે. આ તો પ્રત્યક્ષ વ્યાખ્યાનો સાંભળ્યા છે એટલે એ બધા સ્મરણ રહી ગયા હોય ને. કેવો કેવો વિષય ચાલ્યો હતો. બહુ સૂક્ષ્મ વિષય ચાલે. એક વિકલ્પ ઊઠ્યો, તો જાણ્યું છે જ્ઞાનમાં. વિકલ્પ ઊઠ્યો, એ ખબર કેમ પડી ? કે જ્ઞાનમાં જણાયું ત્યારે. પણ પરમ કર્તા થઈને એવો વિકલ્પને વળગ્યો કે આ મેં કર્યો... આ મેં કર્યો... આ મેં કર્યો... આ મારું કાર્ય છે. બસ. એ આખા જ્ઞાનને અને જ્ઞાનમય આત્મતત્ત્વને ચૂકી જાય છે. જાણનાર મટી જાય છે અને એકાંતે કર્તા થઈ જાય છે. કર્તા-કર્મનો અધિકાર ચાલ્યો છે ને? એમાંથી એવું કર્તૃત્વ ઊભું થાય છે. એ મિથ્યાત્વનું સૂક્ષ્મમાં સૂક્ષ્મ સ્વરૂપ છે કે જ્યાંથી મિથ્યાત્વ ઊગે છે, મિથ્યાત્વનો અંકુર જ્યાંથી ફૂટીને પછી ફાલ્યેફુલે થાય છે. પણ ઊગે છે અહીંથી. અહીંયા એ વાત લીધી છે.

એને તોડવા માટે આ વાત છે. કે પ્રથમમાં પ્રથમ પહેલી ક્રિયા શું ? કે સર્વ પ્રકારે ભેદજ્ઞાનમાં-રાગથી, વિકલ્પથી જુદાં પડવાના જ્ઞાનમાં અથવા જુદાં પડવાની ક્રિયામાં પ્રવિણતા એટલે કુશળતા પ્રાપ્ત કરવી. તે જ પ્રથમ ક્રિયા છે. પહેલું કરવા યોગ્ય હોય તો આ છે. દ્રવ્યમાં તારે શું કરવું છે ? ‘દ્રવ્ય તો ત્રિકાળ નિરાવરણ છે.’ અંતરંગ જે આત્મસ્વભાવ છે એને તો આવરણ થઈ શકતું નથી, લાગુ થઈ શકતું નથી, લાગુ કરી શકાતું નથી અથવા આવરણની એમાં પહોંચ નથી. આવરણ ત્યાં સુધી પહોંચી શકતું નથી. આવરણ પર્યાયમાં આવે છે. વિશેષ અવસ્થા, વિશેષ ભાવમાં આવરણ હોય છે. ત્રિકાળી સામાન્યમાં આવરણની પહોંચ નથી. એ તો ત્રિકાળ નિરાવરણ છે. ‘દ્રવ્ય તો ત્રિકાળી નિરાવરણ છે.’ દિગંબર સાહિત્યમાં આ વિષય બહુ ચોખ્ખો છે. જે અંતરંગ દ્રવ્યનો વિષય છે, જે સામાન્ય દ્રવ્ય છે એ

વિષય સર્વ સત્શાસ્ત્રોની અંદર બહુ ચોખ્ખો છે.

‘દ્રવ્ય તો ત્રિકાળ નિરાવરણ છે પણ વર્તમાન પર્યાયમાં રાગાદિને મિશ્રિત કર્યા છે.’ જે રાગ ઉત્પન્ન થાય છે એ અનાત્મભાવે અને અનાત્મ સ્વરૂપે, અનાત્મભૂત, અસ્વભાવભૂત, વિભાવભૂત હોવા છતાં એને મિથ્યાભાવે પોતારૂપ કર્યા છે. થઈ શકે એવું તો છે નહિ. પણ મિથ્યાભાવે એને પોતારૂપ કર્યા છે, એને મિશ્રિત કર્યા છે એમ કહેવામાં આવે છે. પોતારૂપે અનુભવ કર્યો એટલે પોતા સાથે મિશ્રિત કર્યા, એમ કહે છે. થઈ શકતા નથી એ છૂટી જાય છે. સમય સમયના જે કોઈ રાગાદિ વિભાવો થાય છે એ થાય છે અને છૂટી જાય છે... થાય છે અને છૂટી જાય છે. આત્મારૂપ થઈ શકતા નથી. સારો લાગે અને એ રાગ એને સુહાય તોપણ રાખ્યો રાખી શકે એમ નથી. કેમકે એની એ ચીજ નથી. એ સ્વતંત્ર આવે છે અને સ્વતંત્ર જાય છે.

‘વર્તમાન પર્યાયમાં રાગાદિને મિશ્રિત કર્યા છે. તોપણ...’ ભલે મિશ્રિત કર્યા. એને નહિ છોડી શકે એ વાત નથી. કેમકે એ તો ખરેખર છુટા પડ્યા છે. તારે અંતરંગ અવલોકનથી એનું છુટાપણું જાણીને અનુભવમાં લેવું જરૂરી છે. એટલી વાત છે. ‘તોપણ ભેદજ્ઞાનની પ્રવિણતાથી, રાગની દશાની દિશા પર તરફ છે અને જ્ઞાનની દશાની દિશા સ્વ તરફ છે. એમ બે વચ્ચે પ્રજ્ઞાછીણી મારવાથી ભિન્નતા અનુભવી શકાય છે.’ આ ભેદજ્ઞાન કરવાની અંતરંગ રીત અને વિધિનું અહીંયાં નિરૂપણ છે. અનુભવપૂર્વક કહેલી આ વાતને અનુભવપદ્ધતિએ સમજવા જેવી છે. કઈ પદ્ધતિએ ? અનુભવપદ્ધતિએ વાત સમજવા જેવી છે. આ જગ્યાએ બહુ સુંદર વાત કરી છે. ઊંડી, મર્મની વાત કરી છે. આ બોલ જ અહીંયાં આટલા માટે પકડ્યો છે. ભેદજ્ઞાનનો વિષય તો ઘણી જગ્યાએ આવે છે. પણ આ બોલ ખેંચવાનું પ્રયોજન અહીં આટલું છે. આ જે લીટી પડી છે, એમાં આખા બોલનો કસ અહીંયાં છે.

કહે છે, કે તું જો તો ખરો. તારા અનુભવને તપાસ તો ખરો, અવલોકન કર તો ખરો. આ અનુભવની પદ્ધતિ છે. સમજવાની પણ અનુભવને પકડીને સમજવાની

પદ્ધતિ તે અનુભવપદ્ધતિ છે. કે જો તો ખરો રાગની દિશા ક્યાં છે? કે રાગની દિશા પર તરફ છે અને જ્ઞાનની દિશા સ્વ તરફ છે. જો, જરા જો ! પહેલા તો એમ કહેશે. ડહાપણ તો છે ને ? પંચેન્દ્રિય અને મન બે મળ્યું. મન આવે ત્યારે થોડું ડહાપણ આવે છે. તો શું કહેશે ? કે રાગ તો ઠીક છે પર તરફ છે જ તે. કેમકે પર વિષય બાજુનો રાગ છે, આકર્ષણ છે. પણ જ્ઞાન પણ ઇન્દ્રિયજ્ઞાન છે અમારે તો. અમારે તો ઇન્દ્રિયજ્ઞાન છે અને ઇન્દ્રિયજ્ઞાન પર તરફ અમારું જાય છે. ચક્ષુ ઇન્દ્રિયથી રૂપ જોઈએ છીએ, કર્ણેન્દ્રિયથી શબ્દ સાંભળીએ છીએ. જ્ઞાન પણ પર તરફ છે. અને આપ અહીંયાં એમ કહો છો કે જ્ઞાનની દિશા સ્વ તરફ છે. આ વાત સમજાણી નહિ. બહુ મુદ્દાનો Point છે. ઉપરટપકે એને આ વાત સમજાશે નહિ. એને એમ લાગશે કે જ્ઞાનની દિશા પર તરફ છે અને આ જ્ઞાનની દિશા સ્વ તરફ છે એવી વાત ક્યાંથી આવી ?

જ્યારે તે રાગ અને જ્ઞાનને તે મિશ્રિત કર્યા છે ત્યારે તો તારી આ પરિસ્થિતિ તને લાગી છે. મિશ્રિત કર્યા છે એમાં આ પરિસ્થિતિ લાગી છે. પણ અમે તને કહીએ છીએ, કે જરાક ધીરો થઈને અંતર અવલોકન કર. રાગની દિશા પર તરફ છે અને જ્ઞાનની દિશા સ્વ તરફ છે.

મુમુક્ષુ :- મિથ્યાદષ્ટિ...

પૂજ્ય ભાઈશ્રી :- ત્યારે મિથ્યાદષ્ટિપણું નહિ રહે. તારે શું સ્થાપવું છે ? મિથ્યાદષ્ટિને સ્થાપવું છે ? કે તારું મિથ્યાદર્શન મટશે આમાં, એમ કહેવું છે. જુઓ ! કોઈ જ્ઞાનની ક્રિયા સ્થિર નથી. આ પ્રશ્નની અંદર તે એમ સ્થાપ્યું, કે જ્ઞાન તો પર તરફ છે એટલે ધ્રુવ પર તરફ છે એમ સ્થાપ્યું. એ તો તે જ્ઞાનની ધ્રુવતા સ્થાપી. પર તરફ જ્ઞાન ધ્રુવ છે એમ સ્થાપ્યું. એ તો સમયે સમયે બદલતું છે. પણ જ્ઞાનમાં જરાક જો તો ખરો કે જ્ઞાનમાં શું છે ? કે જ્ઞાનમાં જ્ઞાન છે. જ્ઞાનમાં જ્ઞાન છે એટલે શું ? કે જ્ઞાનમાં જ્ઞેય નથી એનું નામ જ્ઞાનમાં જ્ઞાન છે. (વિશેષ લઈશું....)

**પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા લિખિત 'અનુભવ સંજ્ઞવની' ગ્રંથમાંથી
આત્મજાગૃતિ વિષયક ચૂંટેલા કેટલાક વચનામૃતો**

‘હું જ્ઞાનમાત્ર છું’ તેવા ભાવે અંતર સાવધાની છે. તેમ સાવધાની થતાં અન્ય ભાવ સહજ રોકાય. જ્ઞાનદશામાં - જ્ઞાનચેતનામાં નિરંતર આવી નિર્વિકલ્પ જાગૃતિ છે; તેવી દશા થવાને અર્થે મુમુક્ષુજીવને પણ સવિકલ્પ જાગૃતિ ઉત્પન્ન હોય છે. સંક્ષેપમાં આ જાગૃતિ તે જ વાસ્તવિક મુમુક્ષુતા છે. સત્પુરુષના યોગે તે સહજપણે ઉત્પન્ન થવા યોગ્ય છે. (૧૨)



ઉદય અને ઉદયભાવમાં જીવ ઓતપ્રોત / તન્મય રહ્યા કરે છે - અત્યંત મમત્વ કરે છે. ત્યાં જાગૃતિનો અભાવ વર્તે છે. (૧૩)



આ સંસારની જંજાળ વિષમ પરિણામોનું નિમિત્ત છે. તેવા આ સંસારના પ્રસંગોમાં, સ્વરૂપે કરીને પોતાની ભિન્નતા અવલોકતા / અનુભવતાં સમતા રહે તે જ આત્મચિંતન છે. (૨૮)



વ્યવસાયાદિમાં જોડાવું પડતું હોય, ત્યારે તેમાં ઉત્સાહ / રસ ન વધે તેવી જાગૃતિ / સાવધાની રહેવી ઘટે છે. જેથી નિવૃત્તિ કાળે તે તે ઉદય ભાવનો રસ નડે નહિ. (૮૮)



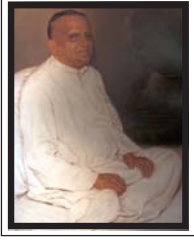
પર વિષયમાં સુખનો અનુભવ તે કલ્પિત છે, જૂઠો છે. ત્યાં ખરેખર સુખ અથવા આનંદ ન થતો હોવા છતાં, આભાસ થાય છે. તેમાં જૂઠો આનંદ મનાય છે. આ સિદ્ધાંત કોઈપણ કક્ષાના કષાયની મંદતાવાળા પરિણામને પણ લાગુ પડે છે. નિજહિતના પ્રયોજનની દષ્ટિકોણવાળા જીવને જૂઠા - કૃત્રિમ - આનંદમાં પોતે છેતરાય નહિ તેની સતત જાગૃતિ - સાવધાની પ્રસંગે પ્રસંગે, કાર્યે કાર્યે રહેવા યોગ્ય છે. કારણ કે તેમાં અધ્યાત્મિક નુકસાન છે. (૧૨૩)



મહાપુરુષોનું જીવન ચરિત્ર જોતાં, તે એમ પ્રતિબોધે છે કે, નિરંતર ઉદયમાન એવો કર્મ-પ્રસંગ, તે નવા પ્રતિબંધનો હેતુ અનંતકાળથી થતો આવ્યો છે, ત્યાં પોતાની પૂરી શક્તિથી જાગૃત રહેવા યોગ્ય છે. અર્થાત્ અજાગૃતપણું રહેવા યોગ્ય નથી - તેમ પ્રકાશી અનંત આત્માર્થ પ્રતિબોધ્યો છે. તેથી પૂર્વપ્રારબ્ધ એવો જે કર્મપ્રસંગ પ્રાપ્ત થાય છે. તે પ્રત્યે જાગૃત - ઉપયોગે, ઉદાસીનપણું વેદવું ઘટે છે. નહિ તો આત્માર્થને હાનિ થતાં વાર લાગે નહિ.

મહાપુરુષાર્થ વડે જે પરાક્રમી છે, તેવા પુરુષાર્થમૂર્તિ ધર્માત્માઓ પણ જ્યાં આત્મદશા સંભાળી સંભાળીને- અંતરમાં અત્યંત સાવધાન રહીને જ્યાં ચાલ્યા છે, ત્યાં મુમુક્ષુજીવે પ્રવર્તતાં તો કેટલું વિશેષ સંભાળવું - ચેતવું જોઈએ, તે વારંવાર પ્રસંગે પ્રસંગે વિચારવા યોગ્ય છે. (૬૩૧)





દ્રવ્યદષ્ટિ પ્રકાશ ગ્રંથમાંથી દષ્ટિનું પરિણમન અને દષ્ટિના વિષય ઉપરના પૂજ્ય શ્રી સોગાનીજીના વચનામૃતો

પ્રશ્ન :- આપ શુદ્ધપર્યાયને દષ્ટિની અપેક્ષાએ ભિન્ન કહો છો કે જ્ઞાનની અપેક્ષાએ ?
ઉત્તર :- દષ્ટિની અપેક્ષાથી ભિન્ન કહીએ છીએ, જ્ઞાનની અપેક્ષાએ તો નહીં. દષ્ટિ કરવાના પ્રયોજનમાં ભિન્નતાનું જોર દીધા વિના દષ્ટિ અભેદ નથી થતી; તેથી દષ્ટિની અપેક્ષાએ જ ભિન્ન કહીએ છીએ; અને મારી તો આ દષ્ટિ પ્રધાન જ શૈલી છે, તેથી આમ જ કહીએ છીએ. (૨)



સિદ્ધ (પર્યાય)થી પણ હું અધિક છું. કારણ કે સિદ્ધ (દશા) તો એક સમયની પર્યાય છે, અને હું તો એવી એવી અનંતપર્યાયોનો પિંડ છું. (૭)



જેમ મેરુ પર્વત અડગ છે, હું પણ (સ્વભાવથી) એવો જ અડગ છું. મેરુમાં તો પરમાણુ આવે જાય છે, પરંતુ મારામાં તો કાંઈ આવતું જતું નથી; એવો હું અડગ છું. (૮)



હું વર્તમાનમાં જ મુક્ત છું, આનંદની મૂર્તિ છું, આનંદથી ભરચક સમુદ્ર જ છું, એવી દષ્ટિ થાય, તો પછી મોક્ષથી પણ પ્રયોજન નથી, મોક્ષ થાઓ તો થાઓ ન થાઓ તો પણ શું ? (પર્યાયની આટલી ગૌણતા દ્રવ્યદષ્ટિમાં થઈ જાય છે.) મને તો વર્તમાનમાં પણ આનંદ આવી રહ્યો છે, પછી પરિણતિમાં તો મોક્ષ થશે જ (એવી પ્રતીતિ આવી જાય છે) પરંતુ મારે તો તેથી પણ પ્રયોજન (દષ્ટિ) નથી. (૯)



દ્રવ્યદષ્ટિના હિસાબે તો શુદ્ધ પર્યાય જ પરદ્રવ્ય છે, મારા અસ્તિત્વમાં તે (શુદ્ધપર્યાય) નથી, રાગની તો વાત જ શું ? (દ્રવ્યદષ્ટિની અપેક્ષાએ અર્થાત્ દ્રવ્યસ્વભાવમાં અહંભાવરૂપ શ્રદ્ધાનું પરિણમ થવું, એવી શ્રદ્ધા થવાથી જ પર્યાય શુદ્ધ થાય છે પરંતુ શ્રદ્ધા તેમાં અહંભાવ કરતી નથી.) (૧૧)



પર્યાયમાં તીવ્ર અશુભ પરિણામ હો, અથવા ઉત્કૃષ્ટમાં ઉત્કૃષ્ટ શુદ્ધ પર્યાય હો, મારામાં (એકરૂપ દ્રવ્ય સ્વભાવમાં) કાંઈપણ બગાડ સુધાર નથી થતો, હું તો જેવો ને તેવો જ છું. (૧૨)



(દ્રવ્યદષ્ટિના જોરમાં) કેવળજ્ઞાનથી પણ અમારે પ્રયોજન નથી-મોક્ષથી પણ પ્રયોજન નથી - તે તો થઈ જાય છે. (૧૩)



પરિણામ પોતાનું હોવા છતાં પણ તેને પોતે ખૂદ જ (કર્તા બુદ્ધિથી) પલટાવી શકતો નથી. અને પરિણામમાં કર્તા-કર્મપણાનો ધર્મ છે. તેથી તે તો પલટશે જ. (જ્યાં સુધી) દષ્ટિ બહાર ઝૂકી છે, દષ્ટિનો પ્રસાર પોતાને છોડીને બહારમાં છે; તો (ત્યાં સુધી) પરિણામ પણ બહાર ઝૂકશે. અને (જો) દષ્ટિ પોતાના સ્વભાવ તરફ છે, તો પરિણામ પણ પોતાની તરફ ઝૂકશે. મારે તો પરિણામ પણ પલટાવવું (ફેરફાર કરવો) નથી. હું તો અપરિણામી છું અને પલટવું મારો ધર્મ જ નથી. તે તો પરિણામનો ધર્મ છે. દષ્ટિના હિસાબથી તો શુદ્ધ પરિણામ પણ મારાથી જુદા જ છે. જ્ઞાન તેને પોતાનો અંશ જાણી લે છે. (૧૬)

પૂજ્ય બહેનશ્રીની તત્ત્વચર્ચા

પ્રશ્ન :- આશ્રયભૂત તત્ત્વનું અવલંબન લેતાં સમ્યગ્દર્શનથી માંડીને કેવળજ્ઞાન સુધીની પર્યાય પ્રગટ થાય છે. આ અવલંબન સાધકદશામાં જ હોય છે કે સિદ્ધદશામાં પણ ચાલુ રહે છે ? તે સમજાવવા કૃપા કરશોજી.

સમાધાન :- સાધકદશામાં જ્ઞાયકનું અવલંબન રહે છે તે અવલંબન સિદ્ધદશામાં પરિણતિરૂપ રહી જાય છે. તેમાં તેને પ્રયત્ન કરવાની જરૂર રહેતી નથી. સાધકદશામાં તે પ્રયત્નરૂપ છે. આત્માનું આલંબન સમ્યગ્દર્શનથી માંડીને કેવળજ્ઞાન સુધી લીધું તેમાં આત્મા જ તેને મુખ્યપણે તેની દૃષ્ટિમાં રહ્યો, તેના આશ્રયમાં રહ્યો. સિદ્ધદશા સુધી તેણે બળવાનપણે આત્માને ગ્રહણ કર્યો, પછી તેને પ્રયત્ન કરવાની જરૂર નથી. તે આલંબનમાં મુખ્યપણે દ્રવ્ય ઉપર જે જોરદાર દૃષ્ટિ હતી તે એમ ને એમ સહજ પરિણતિરૂપે થઈ જાય છે. પછી ત્યાં આલંબન લેવાની જરૂર નથી. જે આશ્રય લીધો તે આશ્રયરૂપે પોતે પરિણમી જાય છે.

સમ્યગ્દર્શન કે સાધકદશામાં આત્મા જ તેને આશ્રયભૂત છે. તેને આત્માના આશ્રયથી જ સંવર-નિર્જરા થાય છે. દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર બધું આત્માના આશ્રયે થાય છે. અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શનના આશ્રયમાં આત્મા છે, સમ્યગ્જ્ઞાનના આશ્રયમાં આત્મા છે ને ચારિત્રના આશ્રયમાં પણ આત્મા જ છે, બધામાં આત્મા છે. જોકે બહારની ભૂમિકા પ્રમાણે અણુવ્રતના ને પંચમહાવ્રતના શુભભાવો હોય, પણ અંતરમાં જે યથાર્થ ચારિત્ર પ્રગટે છે તે આત્માના આશ્રયથી જ પ્રગટે છે. ચારિત્રમાં, સંવરમાં, પ્રત્યાખ્યાન વગેરેમાં આત્માનો આશ્રય છે. ખરેખર બધું અંદર આત્માના આશ્રયથી જ થાય છે. આત્માનું જ આલંબન લીધું તે ઠેક સુધી રહે છે. શ્રેણી ચડીને કેવળજ્ઞાન થાય અને કૃત્યકૃત્યદશા થઈ જાય પછી કાંઈ કરવાનું રહેતું નથી, તે આલંબન

સહજ પરિણતિરૂપે-આત્મામાં આત્મારૂપે-પરિણમી જાય છે. જેવું સ્વરૂપ છે તેવું પ્રગટરૂપે સિદ્ધદશામાં પરિણમી જાય છે. તે પછી આલંબનનો પ્રયત્ન કરવાનું રહેતું નથી, આલંબન સહજરૂપે પરિણમી જાય છે.

(સ્વાનુભૂતિદર્શન-૩૦૪)



પ્રશ્ન :- સાધક આત્માઓને તો વિશ્વાસ આવી ગયો કે જ્ઞાયકના આશ્રયે જ સમ્યગ્દર્શન થાય; પણ જેઓ સાધકદશાએ પહોંચ્યા નથી તેવા જીવોએ તેને પહોંચવા માટે શું કરવું ?

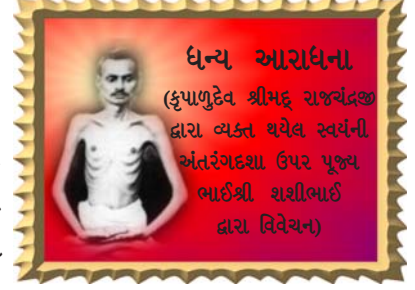
સમાધાન :- જેઓ સાધકદશામાં નથી પહોંચ્યા તેમણે તેનો અભ્યાસ કરવો. આત્માનો આશ્રય લેવાય તો જ સમ્યગ્દર્શન થાય એમ જાણે અને આશ્રય કરે તો સ્વાનુભૂતિ થાય. વસ્તુ સ્વરૂપ તેના જ્ઞાનમાં આવે તો નક્કી કરીને તે જાતનો પ્રયત્ન કરે. આત્માના આશ્રયથી સમ્યગ્દર્શન થાય છે, બીજી કોઈ રીતે સમ્યગ્દર્શન થતું નથી; માટે આત્માનો આશ્રય કેમ લેવાય તે માટે પ્રયત્ન કરે, તે જાતનો વૈરાગ્ય લાવે, મહિમા લાવે, તત્ત્વનો વિચાર કરે, તેની જિજ્ઞાસા કરે, ભૂમિકાવાળાને માટે આ છે. જેને પ્રગટ થયું તેને કેવી રીતે પ્રગટવું ? તેને કેવી સ્વાનુભૂતિ થઈ ? તે જાણીને તેની મહિમા લાવે અને તે માર્ગે જવાનો પોતે પ્રયત્ન કરે. જિજ્ઞાસુ માટે આ છે કે તે વિભાવથી છૂટો પડે, વૈરાગ્ય લાવે, તત્ત્વના વિચાર કરે, તત્ત્વનો નિર્ણય કરે, દ્રવ્ય-ગુણ-પર્યાયના વિચાર કરે અને આત્માનું આલંબન લે. આલંબનમાં દ્રવ્ય છે અને તેની સાથે પર્યાયની પરિણતિ પ્રગટ થાય છે. પર્યાયનું વેદન થાય છે ને દ્રવ્યનો આશ્રય હોય છે. એમ પોતે વિચાર કરીને, નક્કી કરીને પછી તે રૂપે પુરુષાર્થ કરે.

(સ્વાનુભૂતિદર્શન-૩૦૫)



‘એ જ્ઞાનની દિન પ્રતિદિન આ આત્માને પણ વિશેષતા થતી જાય છે.’

કૃપાળુદેવનું આ વચનામૃત—આત્મજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ પછી, તે દશાની પ્રતિદિન વિશેષતા અર્થાત્ નિર્મળપણું અને સ્વરૂપને વિશદ્વપણે ગ્રહણ કરવાના સામર્થ્યનું વિશેષપણું થતું જાય છે તેમ સૂચવે છે. તે ઉપરાંત સ્વયંના પરિણામની ગતિ અને જાતિ ઉપરથી વિશેષ અંદાજ આવે છે તે નીચેના વચનામૃતથી સમજાય છે.



ધન્ય આરાધના

(કૃપાળુદેવ શ્રીમદ્ રાજચંદ્રજી
દ્વારા વ્યક્ત થયેલ સ્વયંની
અંતરંગદશા ઉપર પૂજ્ય
ભાઈશ્રી શશીભાઈ
દ્વારા વિવેચન)

‘હું ધારું છું કે કેવળજ્ઞાન સુધીની મહેનત કરી અલોખે તો નહીં જાય.’

શુદ્ધોપયોગ દ્વારા પ્રગટ થતા સ્વરૂપજ્ઞાનમાં મોક્ષ-દશાની પ્રતીતિ ઉત્પન્ન થાય છે, તેવું જિનાગમમાં વિધાન છે. તદ્દનુસાર ઉક્ત વચનામૃતમાં કૃપાળુદેવને કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ વર્તમાન વર્તતા પુરુષાર્થના પ્રકારથી અવશ્ય થશે તેવી (ભાવી પૂર્ણ દશાની) પ્રતીતિ થતાં જે ભાવી પર્યાયનો વિકલ્પ વાણીગોચર અહીં થયો; ત્યાં દ્રવ્ય-દષ્ટિ દ્વારા તેનો નિષેધ પણ થયો જે નીચેના વચનામૃતથી સમજાય છે.

‘મોક્ષની આપણને કાંઈ જરૂર નથી.’

મોક્ષ-દશા કરતા પણ અનંત ગુણ વિશિષ્ટ એવું નિજપરમાત્મપદ દષ્ટિમાં આવતાં અર્થાત્ પોતે જ પૂર્ણ પરમાત્મસ્વરૂપે દષ્ટિગોચર અને અનુભવગોચર થવાથી, અનાદિ બંધ-મુક્તિથી રહિત એવા પરિપૂર્ણ ધ્રુવ સ્વરૂપમાં (પોતામાં) મોક્ષ-ઉત્પન્ન થવાનો અવકાશ પણ નથી. તેવી દષ્ટિના જોરમાં ભાવી મોક્ષ-પર્યાયની ઉપેક્ષા જ્ઞાની પુરુષને સહજ વર્તે છે, તેવો અંતરૂઢ્વનિ ઉક્ત વચનામૃતમાં વ્યક્ત થાય છે.

‘નિ:શંકપણાની, નિર્ભયપણાની, નિર્મૂઠનપણાની અને નિ:સ્પૃહપણાની જરૂર હતી,

તે ઘણે અંશે પ્રાપ્ત થઈ જણાય છે; અને પૂર્ણ અંશે પ્રાપ્ત કરાવવાની

કરુણાસાગર ગુપ્ત રહેલાની કૃપા થશે એમ આશા રહે છે.’

અજ્ઞાન દશામાં શંકા, ભય, અસમાધાન (મૂઠવણ) અને દીનપણું સહજ હોય છે, તે સર્વ દુ:ખદાયક પરિણામ છે, તેવા પરિણામોની નિવૃત્તિ પ્રત્યક્ષ શાન્ત, સર્વાંગ સમાધાનસ્વરૂપ, અને નિરાલંબ-નિરપેક્ષ સ્વરૂપનું જ્ઞાન થતાં અને તેમાં લીનતા થતાં થાય છે. પોતાને નિ:શંકપણાની, નિર્ભયપણાની, નિર્મૂઠનપણાની અને નિ:સ્પૃહપણાની અનુભૂતિ થતાં ચારિત્રના અળપદોષ શેષ રહી, મહદ્અંશે ઉક્ત દોષોનો અભાવ થયો છે, અને પરિપૂર્ણ નિર્દોષ દશારૂપે, ગુપ્ત રહેલું નિજ પરમ સ્વરૂપ કે જેનો સ્વભાવ પૂર્ણપણે પરિણમવાનો જ છે, તેને કરુણાસાગરની ઉપમા આપીને, તે નિજ પરમાત્મ અવશ્ય કૃપા કરશે અર્થાત્ અવશ્ય પરિણમન થશે જ એવી આશા રહે છે.

‘છતાં વળી એથીયે અલૌકિક દશાની ઇચ્છા રહે છે, ત્યાં વિશેષ શું કહેવું ?’

આ વચનામૃતમાં સર્વ દશાને વિષે સમભાવ વર્તે છે અર્થાત્ સર્વ દશાઓ પ્રત્યે વિધિ-નિષેધ સમાપ્ત થઈ સામ્યભાવરૂપ વીતરાગતા વર્તે તેવી ઇચ્છા રહે છે. વર્તમાનમાં અપૂર્ણ દશા છે અને ભાવી પૂર્ણ દશાનો વિકલ્પ થવા છતાં તે બન્ને દશાના વિકલ્પને શાંત કરી, જે જે કાળે સહજ પરિણમન થાય તે તે કાળે માત્ર જ્ઞાતાદષ્ટાભાવે વર્તી અલૌકિકદશાએ આત્મભાવમાં રહેવું તેવી પોતાની ભાવના છે. પર્યાયના સંબંધમાં આથી વિશેષ કાંઈપણ કહેવાનું હોઈ શકે નહીં.